बी.ए./बी.एससी./बी. कॉम – प्रथम सेमेस्टर

सामान्य हिन्दी (व्याकरण)

2 क्रेडिट– 50 अंक
प्रश्न पत्र– 40 अंक
आंतरिक मूल्यांकन– 10 अंक

उद्देश्य (Objectives)	1. विद्यार्थियों में अभिव्यक्ति कौशल विकसित करना। 2. हिन्दी भाषा को अधिक सशक्त और व्यापक बनाना तथा विद्यार्थियों में भाषा प्रयोग की क्षमता को विकसित करना। 3. शोध के लिए नवीन शैक्षिक दृष्टि की पृष्ठभूमि तैयार करना। 4. सृजनात्मक लेखन तथा आलोचनात्मक दृष्टि का विकास करना।
अधिगम प्रतिफल (Learning Outcomes)	1. भाषायी ज्ञान से अभिव्यक्ति और सम्प्रेषण कौशल का परिमार्जन हो सकेगा। 2. हिन्दी व्याकरण का ज्ञान सृजनात्मकता में उपयोगी सिद्ध हो सकेगा। 3. भाषायी क्षमता से वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी का उन्नयन कर सकेंगे। 4. हिन्दी भाषा का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

प्रश्नपत्र का अंक विभाजन

यह प्रश्नपत्र तीन खण्डों (अ, ब, स) में विभक्त है।

खण्ड– अ के अंतर्गत प्रश्न संख्या 1 में इकाई 1 के भाग (क) एवं (ख) तथा इकाई 2 के भाग (क) एवं (ख) प्रत्येक से दो–दो प्रश्न कुल आठ प्रश्न पूछे जाएंगे। प्रत्येक प्रश्न 02 अंक का होगा।

खण्ड– ब के अंतर्गत प्रश्न संख्या 2, 3 में इकाई 3 के भाग (क) एवं भाग (ख) से एक–एक प्रश्न पूछा जाएगा। प्रत्येक प्रश्न 04 अंक का होगा।

खण्ड– स के अंतर्गत प्रश्न संख्या 4, 5, 6 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं जिसमें इकाई 4 के भाग (क) से दो प्रश्न (प्रत्येक 04 अंक) तथा भाग (ख) से एक प्रश्न (आंतरिक विकल्प सहित) 8 अंक का होगा।

इकाई–1

(क) शब्द निर्माण– उपसर्ग एवं प्रत्यय, संधि एवं समास।

(ख) शब्द के प्रकार– संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया–विशेषण।

Dy. Registrar
(Academic)
University of Rajasthan
JAIPUR

इकाई—2

(क) शब्द एवं वाक्यगत अशुद्धि संशोधन।

(ख) मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ अर्थ एवं वाक्य प्रयोग।

इकाई—3

(क) संक्षेपण।

(ख) पल्लवन।

इकाई—4

(क) पत्र लेखन शासकीय एवं अर्द्धशासकीय पत्र, कार्यालय आदेश, अधिसूचना, ज्ञापन, अनुस्मारक निविदा का प्रारूप।

(ख) निबंध लेखन (शब्द सीमा—400)

आंतरिक मूल्यांकन

राजस्थान के किसी ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक स्थल की यात्रा पर विवरणात्मक लेख।

<u>अनुशंसित ग्रंथ—</u>

1. हिन्दी व्याकरण— कामताप्रसाद गुरू
2. हिन्दी की वर्तनी और शब्द विश्लेषण— किशोरी दास वाजपेयी
3. हिन्दी भाषा की संरचना— भोलानाथ तिवारी
4. अच्छी हिन्दी— रामचन्द्र वर्मा
5. आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना— डॉ. वासुदेवनन्दन प्रसाद, भारती भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
6. हिन्दी का मानक स्वरूप — देवर्षि कलानाथ शास्त्री, साहित्यागार, जयपुर
7. अनुप्रायोगिक हिन्दी— डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी, अरूणोदय प्रकाशन, नई दिल्ली

Dy. Registrar
(Academic)
University of Rajasthan
JAIPUR

अनुक्रम

1.	भाषा : व्याकरण एवं लिपि	1
2.	उपसर्ग और प्रत्यय	7
3.	संधि	21
4.	समास	28
5.	संज्ञा	32
6.	सर्वनाम	35
7.	विशेषण	38
8.	क्रिया	42
9.	क्रिया-विशेषण	46
10.	शब्द एवं वाक्यगत अशुद्धि संशोधन	49
11.	लोकोक्तियाँ और मुहावरे	83
12.	संक्षेपण	145
13.	पल्लवन	163
14.	पत्र-लेखन/प्रारूप	175
15.	निबन्ध	189

- समय का सदुपयोग : जीवन की सफलता का मूलाधार
- राजस्थान में अकाल (सूखे) की समस्या : कारण और निवारण
- राजस्थान के प्रमुख पर्व एवं उत्सव
- राजस्थान में पर्यटन की सम्भावनाएँ
- 21वीं सदी का राजस्थान

- साक्षरता : आवश्यकता, उपादेयता और यथार्थ
- आतंकवाद : कारण और निवारण
- ऊर्जा के परम्परागत एवं गैर परम्परागत स्रोत : दशा, दिशा और सम्भावना
- राष्ट्रभाषा हिन्दी : वर्तमान स्वरूप और समस्याएँ
- वैश्विक महामारी कोरोना (कोविड 19)
- ऑन लाइन पढ़ाई आज की महती आवश्यकता
- आजादी का अमृत महोत्सव : भारत की स्वतंत्रता के 75 वर्ष
- बाबासाहेब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर
- सत्संगति
- सर्वधर्म समभाव : गाँधीजी की अवधारणा

भाषा : व्याकरण एवं लिपि

भारत के कुछ क्षेत्रों को छोड़कर प्राय: अधिकांश भागों में बोलने के स्तर पर हिंदी भाषा का ज्ञान सभी लोगों को है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों का संप्रेषण भाषा के माध्यम से ही करता है। ''भाष्'' धातु से बने ''भाषा'' शब्द में बोलने का भाव ही प्रधान है। अत: मानव के कण्ठ से निकली हुई अर्थवती ध्वनि–समष्टि का नाम ही भाषा है। अर्थात् समाज की इकाई होने के कारण प्रत्येक मनुष्य परस्पर विचार भावना, संदेश, सूचना आदि को अभिव्यक्त करने के लिये भाषा का ही प्रयोग करता है। ये भाषा सांकेतिक हो सकती है, अथवा व्यवस्थित ध्वनियों की हो सकती है लेकिन यह अवश्य है कि भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने भाव, विचार दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाते हैं तथा दूसरे के विचारों, भावों को जान पाते हैं। भाषा के माध्यम से ही हम अपना इतिहास, संस्कृति, संचित ज्ञान–विज्ञान और अपनी महान परंपराओं को जान पाते हैं। भारत बहु भाषा–भाषी देश है, अनेक बोलियाँ हैं यहाँ, जो भारत को एक राष्ट्र बनाती हैं। संस्कृत सभी भारतीय भाषाओं की जननी या सूत्र भाषा है और हिंदी हमारी राजभाषा है। वास्तव में भाषा के दो रूप हैं पहला मौखिक और दूसरा लिखित। मौखिक भाषा आपस में बातचीत के द्वारा या भाषण अथवा उद्‌बोधन आदि में प्रयुक्त होती है, तथा लिखित भाषा लिपि के माध्यम से लिखकर प्रयोग में लाई जाती है। इस प्रकार भाषा विचाराभिव्यक्ति का साधन है, इसके माध्यम से व्यक्ति अपने विचारों को दूसरे व्यक्तियों पर प्रकट कर सकता है। भाषा का मूल तत्त्व ध्वनि है ये ध्वनियाँ मिलकर शब्दों की संरचना करती हैं। शब्दों से वाक्य बनते हैं जिनके द्वारा अभिव्यक्ति की जाती है। देखा जाए तो ध्वनि और शब्द किसी भाषा के मूल तत्त्व होते हैं।

वास्तव में भाषा के दो रूप हैं—(1) मौखिक भाषा अर्थात् बोलचाल की भाषा तथा (2) लिखित भाषा अर्थात् लेखन के स्तर पर प्रयुक्त होने वाली भाषा। या जिस भाषा का प्रयोग लिखकर किया जाता है उसे लिखित भाषा कहते हैं। यही भाषा जब लेखन के स्तर पर प्रयुक्त होती है तो उसे लिपि कहा जाता है। हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी है। मूलत: सामान्य जन–जीवन में मौखिक भाषा का ही प्रयोग होता है और इस मौखिक भाषा को प्रयत्नपूर्वक सीखने की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि बालक जन्म के बाद अपने परिवार और समाज के संपर्क से, तथा परस्पर संप्रेषण–व्यवहार से स्वाभाविक रूप से ही इसे सीख जाता है। लिखित भाषा को सीखने के लिये उस भाषा की वर्तनी, उसी के उच्चारण आदि को प्रयासपूर्वक सीखना पड़ता है। मौखिक भाषा की ध्वनियों के लिये स्वतंत्र लिपि–चिह्नों के द्वारा ही भाषा का निर्माण होता है। एक सीमित क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा के स्थानीय रूप को ''बोली'' कहा जाता है जिसे ''उपभाषा'' भी

कहते हैं। अर्थात् भाषा का सीमित, आम बोलचाल वाला और अविकसित रूप ही बोली कहलाता है। इसमें साहित्य-रचना नहीं होती उसका व्याकरण भी नहीं होता, न ही उसका शब्दकोश होता है जबकि भाषा विस्तृत क्षेत्र में बोली जाती है, उसका व्याकरण और शब्दकोश होता है। यदि किसी बोली का संरक्षण या किन्हीं अन्य कारणों से उस क्षेत्र का विस्तार हो जाता है तो उसका साहित्य लिखा जाने लगता है और वह भाषा बनने लगती है, उसका व्याकरण भी निश्चित होने लगता है।

भाषा को यदि परिभाषित किया जाये तो कहा जा सकता है कि भाषा शब्द ''भाष्'' धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है ''वर्णों में व्यक्त सार्थक वाणी''। महर्षि पातंजलि ने पाणिनि की अष्टाध्यायी पर लिखे अपने महाभाष्य में भाषा को परिभाषित करते हुए लिखा है—''जो वाणी में व्यक्त होती है, उसे भाषा कहते हैं''। आधुनिक काल में हिंदी में वैयाकरणों तथा भाषा-वैज्ञानिकों ने भाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है—''भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली-भांति प्रकट कर सकता है और दूसरे के विचार स्वयं स्पष्टतया समझ सकता है। अथवा यह कहा जा सकता है कि ''भाषा यादृच्छिक उच्चरित ध्वनि-प्रतीकों की वह सार्थक समष्टि है जिसके माध्यम से किसी समाज या वर्ग विशेष के मानव परस्पर भावों और विचारों को अभिव्यक्त कर सकते हैं''। इस परिभाषा से भाषा की निम्न विशेषताओं का स्पष्टीकरण होता है—

(1) भाषा का समाज से गहरा संबंध है। समाज के अभाव में भाषा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अर्थात् भाषा समाज में रहकर ही सीखी जा सकती है। उसका प्रवाह नैसर्गिक एवं प्राकृतिक होता है। भाषा परंपरागत होती है क्योंकि यह अनुकरण द्वारा सीखी जाती है और मनुष्य उसे अनुकरण के द्वारा ही अर्जित करता है।

भाषा एक सामाजिक वस्तु है। उसका संबंध भाषा-भाषी समाज के प्रत्येक मनुष्य से रहता है। उसकी उत्पत्ति समाज से होती है और विकास भी समाज में ही होता है। बच्चा जन्म लेने के पश्चात् जिस भाषा-भाषी समाज में पलता-बढ़ता है, उसी की भाषा को सीखता है। यदि किसी शिशु का पालन-पोषण किसी दूसरे देश में होता है तो वह उसी देश की भाषा को सीख जाता है।

(2) भाषा परिवर्तनशील है—भाषा में निरंतर परिवर्तन होता रहता है, किंतु यह परिवर्तन इतना धीरे-धीरे होता है कि लक्षित नहीं होता, एक लंबे समय के बाद ही दृष्टिगोचर होता है। भाषा में यह परिवर्तन ध्वनि, रूप और अर्थ में आता है। दुग्ध से दूध, दधि से दही, अग्नि से आग, मातृ से माता आदि परिवर्तन कब, कैसे हो गये, इनका पता लगाना कठिन है। काफी समय बीत जाने पर यह अंतर स्पष्ट हो जाता है और धीरे-धीरे इतना अधिक हो जाता है कि परिवर्तित भाषा वैसी ही होने पर भी पूरी तरह एक अलग भाषा प्रतीत होने लगती है।

(3) भाषा पैतृक संपत्ति नहीं है—भाषा का संबंध जन्मना किसी व्यक्ति से नहीं है, न ही किसी जाति या किसी वंश का कोई लक्षण है, कोई भी बालक अपने विशिष्ट वातावरण से कोई भाषा सीख लेता है, भले ही उसके माता-पिता भिन्न भाषा-भाषी हों। यदि कोई भारतीय बालक जन्म से ही किसी यूरोपीय देश में रहे तो वह उसी देश की भाषा को मातृभाषा के रूप में ग्रहण कर लेगा।

(4) भाषा अर्जित संपत्ति है—भाषा किसी भी व्यक्ति को अर्जित करनी पड़ती है, वह हमें स्वत: नहीं प्राप्त होती, बल्कि उसे सीखना पड़ता है। मनुष्य जिस वातावरण में रहता है, अपनी नैसर्गिक बुद्धि से उसी की भाषा सीखता है। जब एक भाषा-भाषी प्रदेश का व्यक्ति दूसरे भाषा-भाषी प्रदेश में जाकर रहने लगता है तो वह दूसरे भाषा-भाषी प्रदेश की भाषा को सीख लेता है। यही भाषा का अर्जन है।

(5) भाषा अनुकरण से सीखी जाती है—भाषा कभी स्वत: नहीं आती, वह अनुकरण से सीखी जाती है। बालक प्रारंभ से ही अपने माता-पिता, भाई-बहिन आदि से भाषा सीखता है। जैसे वे बोलते हैं, वैसे ही बच्चे उनके मुख से उच्चरित ध्वनियों का अनुकरण करके बोलने लगते हैं। बड़े होकर बच्चे समाज में प्रचलित ध्वनियों का अनुसरण कर उस भाषा को बोलने लगते हैं।

(6) भाषा की एक विशेषता यह है कि यह यादृच्छिक उच्चरित ध्वनि-प्रतीकों की वह सार्थक संरचना है जिसके माध्यम से किसी एक समाज के सदस्य परस्पर भावों एवं विचारों का आदान-प्रदान करते हैं, अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। इससे भाषा की चार विशेषताएँ प्रकट होती हैं। पहली यह कि भाषा उच्चरित ध्वनि-प्रतीकों की सुव्यवस्थित योजना है जिसके कारण ही भाषा में भाव-संप्रेषणीयता आती है। भाषा की दूसरी विशेषता इसका प्रतीकमय होना है। प्रत्येक समाज की भाषा के प्रतीक अलग-अलग होते हैं, जो उस समाज या वर्ग-विशेष द्वारा मान्य होते हैं। भाषा की तीसरी विशेषता यह है कि उसके प्रतीक यादृच्छिक होते हैं, क्योंकि वे भाषा-भाषियों की यादृच्छा द्वारा निर्मित किये जाते हैं। भाषा में परिवर्तन होता रहता है और परिवर्तन की गति अलक्षित रहती है जो काफी समय के बाद ही दृष्टिगोचर होती है, इसीलिये भाषा को ध्वनि-प्रतीकों की यादृच्छिक व्यवस्था कहा जाता है। भाषा की चौथी विशेषता यह है कि यह समाज-विशेष के पारस्परिक व्यवहार का सर्वोत्कृष्ट माध्यम है। बालक भाषा को जन्म से प्राप्त नहीं करता, अपितु वह अपने समाज में रहकर अर्जित करता है, सीखता है। अत: कहा जा सकता है कि भाषा मानव-समाज के दैनंदिन व्यवहार का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

भारत के जिन क्षेत्रों में हिंदी भाषा का प्रयोग नहीं होता, वहाँ भी विद्यालयों में प्रारंभ (कक्षा 6) से हिंदी भाषा तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। बोलने के स्तर पर भाषा जल्दी सीखी जाती है, किंतु किसी भाषा की बारीकियों की जानकारी बिना उसके व्याकरण के सीखे भलीभाँति नहीं आती। अत: किसी भाषा से पूर्णतया अवगत होने के लिये उसकी संरचना अर्थात् व्याकरण को जानना आवश्यक है। सार रूप में यह कहा जा सकता है कि भाषा की विशेषता ये है कि यह ध्वनि-प्रतीकों की सार्थक संरचना है और ये प्रतीक प्रत्येक भाषा के अलग-अलग होते हैं, ये यादृच्छिक होते हैं अर्थात् अपनी इच्छा से बनाये हुए होते हैं। एक समाज की अलग भाषा होती है, ये अर्जित संपत्ति है जो अनुकरण द्वारा सीखी जाती है। कोई बालक जन्म से भाषा सीखकर नहीं आता, बल्कि भाषा समाज द्वारा सीखी जाती है।

भाषा के प्रकार

भाषा के प्रमुख रूप से चार प्रकार हैं—

1. मातृभाषा—माता-पिता द्वारा सीखी हुई भाषा मातृभाषा है। अर्थात् जो भाषा बालक अपनी माता से सीखता है, वही उसकी मातृभाषा होती है। मातृभाषा का अर्थ उस क्षेत्र विशेष की

भाषा से है जहाँ बालक का जन्म हुआ है। उसी क्षेत्र विशेष में बोली जाने वाली भाषा ही मातृभाषा होगी।

2. राष्ट्रभाषा—जिस भाषा को देश की अधिकांश जनता बोलती है, और समझती है वह राष्ट्रभाषा है, इसका संविधान में उल्लेख होता है। भारतीय संविधान में हिंदी को राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त है। 14 सितंबर, 1949 को भारतीय संविधान सभा के माननीय सदस्यों द्वारा सर्वसम्मति से एक ऐतिहासिक निर्णय लिया गया कि "संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी"। आज हिंदी भाषा को राजभाषा एवं राष्ट्र भाषा का गौरव प्राप्त है। यह आवश्यक नहीं कि राष्ट्र भाषा सबकी मातृभाषा हो।

3. प्राचीन अथवा सांस्कृतिक भाषा—संस्कृत को भारत की सांस्कृतिक भाषा माना गया है, जिसमें भारतीय उच्चविचार, आदर्श, दर्शन, मूल्य और आध्यात्मिक आकांक्षाएँ निहित हैं। वेद उपनिषद आदि इसी भाषा में लिखित हैं।

4. अंतर्राष्ट्रीय या विश्व भाषा—जिस भाषा के माध्यम से एक देश दूसरे देश से विचारों का आदान-प्रदान करने में सक्षम हो वह विश्व भाषा है। अंग्रेजी भाषा को यह स्थान प्राप्त है। अर्थात् विभिन्न भाषा-भाषी वर्गों के बीच संप्रेषण के लिये जिस भाषा का प्रयोग होता है, वह विश्वभाषा या संपर्क भाषा कहलाती है।

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है कि भाषा के दो भेद हैं। एक मौखिक भाषा और दूसरी लिखित भाषा। मूलतः सामान्य जन-जीवन के मध्य बातचीत में मौखिक भाषा का ही प्रयोग होता है जिसे प्रयत्नपूर्वक सीखने की आवश्यकता नहीं होती, संप्रेषण-व्यवहार से स्वाभाविक रूप से इसे सीख लिया जाता है जबकि लिखित भाषा की वर्तनी और उसी के अनुरूप उच्चारण प्रयत्नपूर्वक सीखना पड़ता है।

लिपि

भाषा की ध्वनियों को जिन लेखन-चिह्नों में लिखा जाता है उसे लिपि कहते हैं। जैसे हिंदी की लिपि "देवनागरी" है। इसी प्रकार अंग्रेजी की लिपि "रोमन", उर्दू की लिपि "फ़ारसी" है। इस प्रकार लिपि मौखिक भाषा को लिख कर व्यक्त करने की विधि है। भारत सरकार के अधीन केन्द्रीय हिंदी निदेशालय ने अनेक भाषाविदों, हिंदी-सेवी संस्थानों, और विभिन्न मंत्रालयों के प्रतिनिधियों के सहयोग से हिंदी की वर्तनी का देवनागरी में एक मानक स्वरूप तैयार किया है जो सभी हिंदी प्रयोक्ताओं के लिये समान रूप से मान्य है। देवनागरी लिपि ध्वन्यात्मक लिपि है जिसमें अक्षरात्मक एवं वर्णनात्मक लिपियों की विशेषताएँ पायी जाती हैं। देवनागरी लिपि का उद्‌भव ब्राह्मी लिपि से हुआ है। देवभाषा संस्कृत से संबद्ध होने के कारण ही इसे देवनागरी कहा जाता है।

देवनागरी लिपि की कुछ मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. यह व्यवस्थित और वैज्ञानिक लिपि है।
2. प्रत्येक ध्वनि के लिये अलग लिपि-चिह्न है।
3. स्वरों में ह्रस्व-दीर्घ का भेद है, तथा स्वरों की मात्राएँ निश्चित हैं।

4. एक लिपि चिह्न से सदैव एक ही ध्वनि की अभिव्यक्ति होती है।
5. उच्चारण और प्रयोग में समानता है।
6. अल्पप्राण और महाप्राण ध्वनियों के लिये तथा अघोष और सघोष ध्वनियों के लिए अलग-अलग लिपि-चिह्न हैं।
7. प्रत्येक नासिक्य ध्वनि—ङ्, ञ् ण्, न् म् उस वर्ग के व्यंजनों के अंत में है।
8. इस लिपि में जो लिखा जाता है, वही उच्चरित होता है।
9. केवल उच्चरित ध्वनियों के लिये लिपि-चिह्न हैं।
10. देवनागरी लिपि में दस स्वर चिह्न, तेतीस व्यंजन चिह्न, एक अनुस्वार, एक अनुनासिक एवं एक विसर्ग का चिह्न इसकी संपन्नता के प्रमाण हैं, जिनमें किसी भी भाषा के ध्वनियों के अंकन की क्षमता है। अत: कहा जा सकता है कि यह लिपि पूर्णतया वैज्ञानिक लिपि है। देवनागरी लिपि को बाएँ से दाएँ की ओर लिखा जाता है।

आज का युग डिजिटल-तकनीक का युग है। छोटी कक्षा से ही बालक आज मोबाइल, लैपटॉप, कंप्यूटर आदि का प्रयोग करना सीख रहे हैं जिससे वे आवश्यकता पड़ने पर विषय से संबंधित ज्ञान इन माध्यमों से प्राप्त कर सकते हैं। वर्तमान में कोरोना-काल के समय में तो इसकी अतीव आवश्यकता महसूस की जा रही है क्योंकि इस काल में सभी स्कूल, कॉलेज बंद हो जाने से ऑनलाइन ही पढ़ाई की जा रही है। अत: इन सब स्थितियों से अवगत होते हुए हिंदी भाषा की संरचना-उसके व्याकरण की जानकारी प्राथमिक स्तर से ही सरलीकृत करके पाठकों को देना इस पुस्तक का प्रमुख उद्‌देश्य है।

हिंदी व्याकरण

वैसे तो हिंदी व्याकरण विद्यालयों में छोटी कक्षाओं से ही पढ़ाया जाता है, किंतु व्यावहारिक रूप से बच्चा बोलना सीखने के साथ ही अपनी मातृभाषा का प्रयोग करता है, जबकि वह उस भाषा की बारीकियों के विषय में अनभिज्ञ होता है। वह जिस भाषा के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त करता है, उस भाषा की संरचना को जानना और उसका सही प्रयोग करने के लिये व्याकरण की जानकारी आवश्यक है। भाषा ही वह साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों को दूसरों पर भली-भांति प्रकट कर सकता है तथा दूसरों के विचारों को स्पष्ट रूप से समझ सकता है। भाषा की कुछ विशेषताएँ—(जैसे भाषा ध्वनि-प्रतीकों की सार्थक संरचना है और ये प्रतीक प्रत्येक भाषा के अलग-अलग होते हैं। ये प्रतीक यादृच्छिक होते हैं यानी अपनी इच्छा से बनाये हुए होते हैं। भाषा समाज द्वारा सीखी जाती है। कोई बालक जन्म से उसे सीखकर नहीं आता।) इस प्रकार की संरचना, उसके व्यावहारिक रूप आदि को विस्तार से समझने के लिये उस भाषा का व्याकरण जानना आवश्यक है।

व्याकरण ''वि + आ + कृ'' अर्थात् भाषा को शुद्ध एवं स्थाई रूप प्रदान करना। वास्तव में व्याकरण की परिभाषा है—''व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा: अनेनेति व्याकरणम्'' अर्थात् जिसके द्वारा शब्दों की व्युत्पत्ति की जाये अथवा शुद्धीकरण किया जाये वह व्याकरण है। वास्तव में व्याकरण प्रत्येक भाषा का प्राण है। बिना व्याकरण के कोई भी व्यक्ति भाषा का उचित ज्ञान

प्राप्त नहीं कर सकता है। जैसा कि कहा गया है ''मुखम् व्याकरणम् प्रोक्तम्'' तथा बिना व्याकरण के व्यक्ति भाषा की दृष्टि से अंधा होता है। ''विना व्याकरणेन अन्धः''। कहा जाता है कि भगवान शंकर के डमरू से उच्चरित ध्वनि से 14 ''माहेश्वर सूत्र'' की उत्पत्ति हुई है। इस पर महर्षि पाणिनि ने ''अष्टाध्यायी'' पुस्तक की रचना की। उसके बाद महर्षि पतंजलि ने पाणिनि सूत्रों की व्याख्या की और ''महाभाष्य'' नामक ग्रंथ की रचना की। माहेश्वर सूत्र निम्न हैं जिनके आधार पर संस्कृत व्याकरण बना। हिंदी का व्याकरण इसी आधार पर है, इसलिये इसको जानना आवश्यक है।

14 माहेश्वर सूत्र—1. अ, इ, उ 2. ऋ, लृ, क् 3. ए, ओ, ङ् 4. ऐ, औ च् 5. ह, य, व र, ट् 6. ल, ण् 7. ञ, म, ङ, न, म् 8. झ, भ, ञ् 9. घ, ढ, ध, ष् 10. ज, ब, ग, ड, द, श् 11. ख, फ, छ, ठ, च, ट, त, व् 12. क, प, य् 13. श, ष, स, र् 14. ह, ल्।

उपर्युक्त सूत्रों का ज्ञान होना व्याकरण की जानकारी के लिए अति महत्त्वपूर्ण है।

भाषा का वैज्ञानिक स्वरूप (वर्ण विचार, शब्द विचार एवं वाक्य विचार)

इन सभी पर क्रम से आगे विचार किया जायेगा।

❑❑

2

उपसर्ग और प्रत्यय

संस्कृत और हिन्दी व्याकरण के साथ-साथ प्रत्यय और उपसर्ग भाषा-विज्ञान में भी चर्चित रहे हैं, परन्तु भाषा-विज्ञान की एतद् सम्बन्धी धारणा एवं मान्यता पृथक् है। भाषा-विज्ञान के अनुसार प्रत्यय (Affix) वह रूप-तत्त्व है जो प्रकृति या मूल शब्द के साथ जुड़कर उसके अर्थ को किसी-न-किसी प्रकार बदल देता है। उल्लेखनीय है कि शब्द-रचना में दो तत्त्व स्वीकृत हैं—प्रकृति और प्रत्यय। प्रकृति का आशय मूल शब्द है। प्रत्यय तत्त्व जब शब्द के पूर्व जुड़ता है तब भाषा-विज्ञान में उसे पूर्व-प्रत्यय (Perfix), जब बीच में आता है तब मध्य-प्रत्यय (Infix) और जब अन्त में जुड़ता है तब पर-प्रत्यय (Suffix) कहते हैं। इस प्रकार भाषा-विज्ञान की दृष्टि से उपसर्ग, प्रत्यय के ही अन्तर्गत आते हैं और उन्हें पूर्व-प्रत्यय कहा जाता है। मध्य-प्रत्यय मध्य सर्ग भी कहलाते हैं। हिन्दी में पूर्व-प्रत्यय अर्थात् उपसर्ग और पर-प्रत्यय अर्थात् प्रत्यय ही शब्द अथवा पद-रचना में प्रयुक्त होते हैं।

उपसर्ग

'उपसर्ग' शब्द दो पदों के योग से बना है—उप (समीप) तथा सर्ग (सृष्टि करना)। इस प्रकार **उपसर्ग** शब्द का आशय हुआ—निकट आकर सृष्टि करना। उपसर्गों की शब्द की तरह अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती है, किन्तु वह जिस शब्द के पूर्व जुड़ता है उसमें पर्याप्त परिवर्तन या नूतन अर्थ का समन्वय कर देता है। इस प्रकार उपसर्ग की परिभाषा देते हुए यह कहा जा सकता है कि—**उपसर्ग वह वर्ण या वर्णसमूह है जो किसी शब्द के प्रारम्भ में जुड़कर उसके अर्थ में विशिष्टता, चमत्कार या परिवर्तन पैदा कर देता है।**

महत्त्व—उपसर्ग के सहयोग से हम अपेक्षानुसार नूतन शब्द का गठन कर लेते हैं। एक उपसर्ग अनेक धातुओं या एक धातु अनेक उपसर्गों के संयोग से शब्द-निर्माण कर सकते हैं। जैसे—हृ धातु से बने शब्द हार से उपसर्ग अनु, आ, वि, परि, उप, सम, प्र, प्रति के संयोग से क्रमशः अनुहार (प्रतिरूप), आहार (भोजन), विहार (भ्रमण), परिहार (त्यागना), उपहार (भेंट), संहार (नष्ट करना), प्रहार (चोट करना), प्रतिहार (द्वारपाल) प्रभृति शब्द बनते हैं। इसी प्रकार अनु उपसर्ग से शासन, करण, गमन, चर आदि शब्दों के संयोग से अनुशासन, अनुकरण, अनुगमन, अनुचर आदि शब्द बनते हैं। इतना ही नहीं नूतन शब्दों के निमित्त एक से अधिक उपसर्गों का उपयोग हो सकता है। जैसे—

वि + नि + योग = विनियोग   परि + आ + वरण = पर्यावरण

हिन्दी-उपसर्ग—हिन्दी भाषा में निम्न तीन प्रकार के उपसर्ग प्रचलित हैं—

(1) तत्सम उपसर्ग, (2) तद्भव उपसर्ग, (3) विदेशी उपसर्ग।

1. संस्कृत उपसर्ग से बने शब्द

उपसर्ग	अर्थ/आशय	निर्मित शब्द
1. अति-	अधिक, अपार, उस पार	अतिकाल, अतिरिक्त, अतिचार, अत्या अतिशय, अत्यन्त, अतिक्रमण, अत्युक्ति।
2. अधि-	ऊपर, श्रेष्ठ, समीक्षा	अधिपति, अधिकरण, अधिकार, अधि अध्यक्ष, अध्यापक, अधिशासी।
3. अनु-	क्रम, पश्चात्, समानता	अनुशासन, अनुकरण, अनुगमन, अनुशी अनुवाद, अनुरूप, अनुकूल, अनुक्रम, अनु
4. परि-	आस-पास, चारों ओर, पूर्ण, अतिशय, त्याग	परिभ्रमण, परिगमन, परिक्रमा, परिजन, परिण परिधि, परिपूर्ण, परिवर्तन, परिणय, पर्या परिशीलन, परिदर्शन, परिचय, परिज्ञान, परिह
5. अप-	लघुता, हीनता, अभाव, विरुद्ध	अपहरण, अपंग, अपकर्म, अपमान, अपश अपराध, अपराह्न, अपभ्रंश, अपकीर्ति, अपय
6. अभि-	समीपता, अधिकता, इच्छा प्रकट करना	अभिभावक, अभियान, अभिशाप, अभिप्रा अभियोग, अभिसार, अभिमान, अभिन अभ्युदय, अभ्यागत, अभ्यास, अभिलाष अभिनेता, अभियुक्त।
7. अव-	हीनता, अनादर, पतन	अवज्ञा, अवगुण, अवशेष, अवतार, अवलोक अवस्था, अवनति, अवगाहन।
8. आ-	सीमा, ओर, समेत, कमी, विपरीत, व्याप्ति	आजन्म, आपाद, आगमन, आरक्त, आकाश आकर्षण, आरम्भ, आक्रमण, आदान, आचरण आजीवन, आरोहण, आमुख, आमरण, आक्रोश आहार, आरोह, आपात, आदेश, आकंठ।
9. अपि-	भी	अपितु, अपिधान, अपिहित।
10. दुर्/दुस्, दुश्/दुष्	बुरा, कठिन, दुष्ट, विपरीत	दुर्गम, दुर्जन, दुर्लभ, दुर्गुण, दुर्गति, दुर्बल, दुर्बुद्धि दुर्वासा, दुराचार, दुरात्मा, दुराशा। दुश्चरित्र, दुश्शासन, दुश्शील, दुश्चिंता। दुष्कर्म, दुष्कर, दुष्परिणाम। दुस्साहस, दुस्साध्य, दुस्तर, दुस्सह, दुस्स्वप्न।
11. उत्/उद् (मूल उपसर्ग	ऊपर, उत्कर्ष, श्रेष्ठ	उत्तीर्ण, उत्कर्ष, उत्कंठा, उत्तप्त, उत्तम, उत्पन्न, उत्थान, उत्तेजित, उत्पन्न, उत्सर्ग, उत्कृष्ट।

	उद् माना जाता है।)		उद्भव, उद्गार, उद्घाटन, उद्योग, उदाहरण, उद्बोधन। उन्नति, उन्मत्त। उल्लंघन, उल्लेख, उल्लास। उच्छ्वास, उच्चारण। उज्जयिनी, उज्ज्वल।
12.	उप-	निकट, गौण, सहायक, हीनता	उपहार, उपभोग, उपभोक्ता, उपनियम, उपकार, उपकूल, उपदेश, उपस्थिति, उपवन, उपासना, उपन्यास, उपनाम, उपसर्ग।
13.	नि-	नीचे, भीतर, अभाव, बड़ा, विशेष, निषेध	निकृष्ट, निपात, निगम, निडर, निदर्शन, निवारण, निरोध, निदान, निबन्ध, नियोग, निदेशक, निवेश, नियोजन, निधि, न्यास, न्याय।
14.	निर्-	बड़ा, विशेष, निषेध, रहित	निर्विरोध, निर्भय, निर्जीव, निर्मल, निर्वसन, निर्गमन, निर्धन, निरंजन, निरन्तर, निरीक्षक।
15.	निस्-	बाहर, निषेध, रहित, बड़ा	निश्छल, निश्चल, निश्चित, निश्चिन्त, निश्वास। निष्कासन, निष्काम, निष्कंटक, निष्प्रभ, निष्पत्ति। निस्तेज, निस्संतान, निस्वार्थ।
16.	परा-	उलटा, अनादर, परे, चरम	पराजय, पराभव, परावर्तन, पराक्रम, परामर्श, परास्त, पराकाष्ठा, पराभूत।
17.	प्र-	अधिक, ऊपर, आगे, यश, उत्कर्ष	प्रगति, प्राचार्य, चलन, प्रजनन, प्रकाश, प्रख्यात, प्रचार, प्रबल, प्रयास, प्रस्थान, प्रणाम, प्रसिद्धि, प्रताप, प्रहसन, प्रस्तावना, प्रवचन।
18.	प्रति-	विरोध, बराबरी, प्रत्येक, परिवर्तन, दिशा	प्रतिकूल, प्रतिपक्ष, प्रतिलिपि, प्रतिध्वनि, प्रतिकार, प्रतिउत्तर (प्रत्युत्तर), प्रतिनिधि, प्रतिबिम्ब, प्रतिदान, प्रत्युपकार, प्रतिमा, प्रतिष्ठा, प्रत्यक्ष, प्रत्यर्पण।
19.	वि-	विशेष, भिन्न, हीन, अभाव, असमानता	विख्यात, विश्रुत, विन्यास, विविध, विपक्ष, विकार, विकृति, विजय, विचित्र, विजातीय, विनाश, विफल, विज्ञान, विवाद, विशेष।
20.	सम्-	पूर्णता, निरन्तरता, संयोग, संगति, शुद्ध	सन्तुष्ट, सन्तति, सम्बोधन, संगम, संग्रह, संयोग, संन्यास, सम्मेलन, संहार, संस्कृत, सम्मुख, संग्राम, संसर्ग, संविधान, समाचार, समग्र, समायोजन, संचालन, संजय, संदेहास्पद।
21.	सु-	अच्छा, सरल, व्यापक	सुपरिचित, सुपात्र, सुलभ, सुदिन, सुशील, स्वच्छ, स्वागत, स्वयं, स्वस्ति।

2. हिन्दी उपसर्ग से बने शब्द

उल्लेखनीय है कि जहाँ संस्कृत के कुछ अव्यय उपसर्ग की तरह प्रयुक्त होते हैं, वहीं हिन्दी में संस्कृत उपसर्गों से विकसित तद्भव एवं हिन्दी में अपने विकसित उपसर्ग भी प्रचलन में हैं। इन्हें निम्नवत् देखा जा सकता है—

(i) उपसर्ग की तरह प्रयुक्त अव्यय से बने शब्द

उपसर्ग (अव्यय)	अर्थ/आशय	निर्मित शब्द
1. अ-	निषेध, अभाव	अव्यय, अगोचर, अक्षम, अक्षम्य, अधर्म, अदृष्ट, अगम्य।
2. अन्-	निषेधपूरक, अभाव, रहित	अनन्त, अनंग, अनार्य, अनैक्य, अनुर्वर, अनधिकार, अनधिकारी, अनभिज्ञ, अनर्थ।
3. अधः-	नीचे	अधःपतन, अधःगति (अधोगति), अधोवस्त्र, अधोहस्ताक्षरकर्ता।
4. अन्तर-	मध्य	अन्तरराष्ट्रीय, अन्तरजातीय, अन्तरराज्यीय।
5. अन्तर्-	के मध्य/भीतर	अन्तर्यामी, अन्तर्देशीय, अन्तरात्मा, अन्तर्राष्ट्रीय, अन्तर्निहित, अन्तःकरण, अन्तर्दशा, अन्तर्मन।
6. आविः-	प्रस्तुत	आविष्कार, आविर्भाव, आविर्भूत।
7. का-	नीच/बुरा	कापुरुष, काजल, कापथ, कातर।
8. कु-	बुरा	कुख्यात, कुमार्ग, कुचक्र, कुरंग, कुपात्र।
9. चिर-	देर का, सदा, अधिक	चिरायु, चिरजीवी, चिरकालीन, चिरपरिचित, चिरनवीन, चिरयौवन।
10. तिरः-	विपरीत/तुच्छ	तिरस्कार, तिरोभाव, तिरोधान, तिरोहित।
11. न-	अभाव/विपरीत	नपुंसक, नेति, नास्तिक, नग, नगण्य।
12. पुनः (पुनर्)-	दुबारा/फिर	पुनर्मूल्यांकन, पुनर्विवाह, पुनरवलोकन, पुनरागमन, पुनरुत्थान, पुनरुक्ति, पुनर्जन्म।
13. पुरः-	समक्ष/आगे	पुरस्कार, पुरोधा, पुरोगामी, पुरोहित, पुरस्सर।
14. प्रादुः-	विशेष	प्रादुर्भाव, प्रादुर्भूत।
15. पुरा-	प्राचीन	पुरातन, पुरातत्त्व, पुराण।
16. बहिः-	बाहर	बहिरंग, बहिर्गमन, बहिष्कृत, बहिष्कार।
17. स-	सहित	सजल, सफल, सशक्त, सपूत, सादर, सहृदय।
18. सत्-	अच्छा/भला	सत्पुरुष, सत्संग, सत्कार, सद्गति, सज्जन।
19. सह-	साथ	सहमति, सहकर्मी, सहोदर, सहानुभूति, सहायक।
20. सम्-	साथ/समान	समादर, समाचार, समाज, सम्भाषण, समारोह।
21. स्वी-	अपनाना	स्वीकार, स्वीकृत, स्वीकरण, स्वीकार्य।

(i) हिन्दी (तद्भव) उपसर्ग से बने शब्द

उपसर्ग	अर्थ/आशय	निर्मित शब्द
1. अ-	निषेध/विपरीत	अकाल, अजान, अमोल, अथाह, अछूता, अचेत।
2. अन्-	निषेधपूरक	अनबन, अनजान, अनबोल, अनकही, अनगिनत, अनगढ़, अनपढ़, अनमेल।
3. अध-	अर्द्ध/आधा	अधजला, अधखिला, अधनंगा, अधपका।
4. उ-	विपरीत/ऊँचा	उजड़ना, उखाड़ना, उतावला, उचक्का, उसांस।
5. उन-	एक कम	उन्नीस, उनतीस, उनतालीस, उनचास, उनसठ।
6. औ-	हीन/निषेध/ बुरा	औगुन, औघड़, औघट, औढर, औसर।
7. दु-	बुरा/खराब/ हीन	दुबला, दुसाधु, दुकाल, दुसह।
8. दू-	हीन/निषेध	दूभर।
9. नि-	अभाव/विपरीत	निडर, निधड़क, निहत्था, निडर, निपूता, निपट।
10. क-	बुरा/हीन	कपूत, कदन्न।
11. कु-	बुरा/हीन	कुढंग, कुटेव, कुठाँव, कुपात्र, कुबेला।
12. बिन-	निषेध/अभाव	बिनजाना, बिनबोला, बिनडोले, बिनकहे, बिनब्याहा, बिनबुलाया, बिनदेखा, बिनसोचा।
13. भर-	पूरा/ठीक	भरपूर, भरसक, भरपेट, भरकम, भरपाई, भरमार।
14. स-	उत्तम/साथ	सपूत, सजग, सरस, सचेत, सहित,ह्य सगोत्र।
15. सु-	श्रेष्ठ	सुजस, सुजान, सुपात्र, सुडौल, सुकाल, सुराज।

(ii) हिन्दी में विकसित उपसर्ग से बने शब्द

उपसर्ग	अर्थ/आशय	निर्मित शब्द
1. आत्म-	अपना	आत्मबल, आत्मगौरव, आत्मविश्वास।
2. अप-	बुरा	अपकाजी, अपजस, अपनाम, अपसगुन।
3. बहु-	बहुत	बहुधंधी, बहुतेरा, बहुरंगी, बहुरूपिया।
4. बि-	अभाव	बिकल, बिचलना, बिराग।
5. ति-	तीन	तिराहा, तिकोना, तिगुना, तिमाही, तिपाई, तिरंगा।
6. सवा-	चौथाई अधिक	सवा चार, सवा दस, सवा सौ।
7. पौने-	चौथाई कम	पौने दो, पौने तीन, पौने चार।
8. पर-	दूसरा	परदादा, परदादी, परहित, परदेश, परबस।

. विदेशी उपसर्ग से बने शब्द

हिन्दी में इनके दो प्रमुख वर्ग किए जा सकते हैं—

(i) अरबी-फ़ारसी के उपसर्ग से बने शब्द।
(ii) अंग्रेजी के उपसर्ग से बने शब्द।

(i) अरबी-फ़ारसी के उपसर्ग से बने शब्द

उपसर्ग	अर्थ/आशय	निर्मित शब्द
1. अल-	निश्चित	अलविदा, अलहदा, अलबत्ता, अलबेला।
2. ऐन-	ठीक	ऐनमौका, ऐनवक्त, ऐनआदमी।
3. कम-	हीन/थोड़ा	कमउम्र, कमसिन, कमज़ोर, कमबख़्त।
4. ख़ुश-	अच्छा	ख़ुशनसीब, ख़ुशबू, ख़ुशनुमा, ख़ुशदिल, ख़ुशहा ख़ुशकिस्मत, ख़ुशखबरी, ख़ुशमिज़ाज़।
5. ग़ैर-	निषेध/भिन्न	ग़ैर-जिम्मेदार, ग़ैर-कानूनी, ग़ैर-मुनासिब, ग़ मुमकिन, ग़ैर-सरकारी, ग़ैर-वाज़िब।
6. दर-	में	दरबार, दरख़्वास्त, दरवेश, दरकिनार, दरका
7. ना-	बिना	नापाक, नादान, नाबालिग़, नापसन्द, नालायक नाकाम, नाकामयाब, नामुमकिन, नाख़ुश।
8. फिल/फ़ी-	में/प्रति	फिलहाल, फीसदी, फ़्री आदमी।
9. ब-	से/के/में/ अनुसार	बनाम, बख़ूबी, बदौलत, बक़ौल, बदस्तूर, बग़ बजाय, बतौर, बनिस्बत, बहैसियत।
10. बद्-	बुरा	बदबू, बदचलन, बदनाम, बद्दुआ, बदनसी
11. बर-	पर/ऊपर/बाहर	बरक़रार, बरबाद, बरदाश्त, बरख़ास्त।
12. बा-	साथ/अनुसार	बाइन्साफ, बाअदब, बामुलाहज़ा, बाइज़्ज़ बाक़ायदा, बाज़ावता, बातमीज़, बाकलम।
13. बिला-	बिना	बिलावज़ह, बिलाककसूर, बिलाशर्त।
बे-	बिना/अभाव	बेईमान, बेवक़्त, बेक़सूर, बेशक़, बेवफ़ा, बेज़ बेदर्द, बेहया, बेइज़्ज़त, बेईमान, बेरहम।
14. ला-	बिना	लाचार, लाज़वाब, लावारिश, लापरवाह, लाप
15. सर-	मुख्य	सरकार, सरपंच, सरदार, सरहद, सरगना।
16. हम-	बराबर/समान	हमउम्र, हमदर्द, हमराह, हमदम, हमसफ़र।
17. हर-	प्रत्येक	हरवक़्त, हररोज़, हरसाल, हरएक, हरकोई।

(ii) अंग्रेजी के उपसर्ग से बने शब्द

उपसर्ग	अर्थ/आशय	निर्मित शब्द
1. डिप्टी-	उप	डिप्टी कलेक्टर, डिप्टी डाइरेक्टर, डिप्टी मैनेज
2. वाइस-	उप	वाइस प्रेसीडेण्ट, वाइस प्रिंसिपल।

(i) अरबी-फ़ारसी के उपसर्ग से बने शब्द।
(ii) अंग्रेजी के उपसर्ग से बने शब्द।

(i) अरबी-फ़ारसी के उपसर्ग से बने शब्द

उपसर्ग	अर्थ/आशय	निर्मित शब्द
1. अल-	निश्चित	अलविदा, अलहदा, अलबत्ता, अलबेला।
2. ऐन-	ठीक	ऐनमौका, ऐनवक्त, ऐनआदमी।
3. कम-	हीन/थोड़ा	कमउम्र, कमसिन, कमज़ोर, कमबख़्त।
4. ख़ुश-	अच्छा	ख़ुशनसीब, ख़ुशबू, ख़ुशनुमा, ख़ुशदिल, ख़ुश ख़ुशकिस्मत, ख़ुशखबरी, ख़ुशमिज़ाज़।
5. ग़ैर-	निषेध/भिन्न	ग़ैर-जिम्मेदार, ग़ैर-कानूनी, ग़ैर-मुनासिब, मुमकिन, ग़ैर-सरकारी, ग़ैर-वाजिब।
6. दर-	में	दरबार, दरख़्वास्त, दरवेश, दरकिनार, दर
7. ना-	बिना	नापाक, नादान, नाबालिग़, नापसन्द, नाला नाकाम, नाकामयाब, नामुमकिन, नाख़ुश।
8. फिल/फ़ी-	में/प्रति	फ़िलहाल, फीसदी, फ़ी आदमी।
9. ब-	से/के/में/ अनुसार	बनाम, बखूबी, बदौलत, बक़ौल, बदस्तूर, बज़ाय, बतौर, बनिस्बत, बहैसियत।
10. बद्-	बुरा	बदबू, बदचलन, बदनाम, बद्दुआ, बदन
11. बर-	पर/ऊपर/बाहर	बरक़रार, बरबाद, बरदाश्त, बरख़ास्त।
12. बा-	साथ/अनुसार	बाइन्साफ, बाअदब, बामुलाहज़ा, बाइ बाक़ायदा, बाज़ावता, बातमीज़, बाकलम
13. बिला-	बिना	बिलावज़ह, बिलाकंकसूर, बिलाशर्त।
बे-	बिना/अभाव	बेईमान, बेवक़्त, बेक़सूर, बेशक़, बेवफ़ा, बे बेदर्द, बेहया, बेइज़्ज़त, बेईमान, बेरहम।
14. ला-	बिना	लाचार, लाज़वाब, लावारिश, लापरवाह, ल
15. सर-	मुख्य	सरकार, सरपंच, सरदार, सरहद, सरगना।
16. हम-	बराबर/समान	हमउम्र, हमदर्द, हमराह, हमदम, हमसफ़
17. हर-	प्रत्येक	हरवक़्त, हररोज़, हरसाल, हरएक, हरको

(ii) अंग्रेजी के उपसर्ग से बने शब्द

उपसर्ग	अर्थ/आशय	निर्मित शब्द
1. डिप्टी-	उप	डिप्टी कलेक्टर, डिप्टी डाइरेक्टर, डिप्टी मैं
2. वाइस-	उप	वाइस प्रेसीडेण्ट, वाइस प्रिंसिपल।

3. सब-	उप	सब-रजिस्ट्रार, सब-इंस्पेक्टर, सब-स्टेशन।
4. हाफ-	आधा	हाफ शर्ट, हाफ पैण्ट, हाफ टाइम, हाफ लाइन।
5. हेड-	प्रमुख	हेडक्लर्क, हेड ऑफिस, हेड मास्टर।

विशेष—यह ध्यान रखें कि संस्कृत के उपसर्ग अधिकांशतः तत्सम शब्दों, हिन्दी के उपसर्ग अधिकांशतः तद्भव या देशज़ शब्दों, अरबी-फ़ारसी के उपसर्ग अधिकांशत अरबी-फ़ारसी शब्दों और अंग्रेजी के उपसर्ग अंग्रेजी शब्दों के साथ ही प्रयुक्त होते हैं।

प्रत्यय

'**प्रत्यय**' शब्द '**प्रति + अय**' के योग से बना है, जिसका अर्थ है—पास में (पीछे) चलना। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्यय वे वर्ण या वर्णसमूह हैं जो किसी शब्द के अन्त में जुड़कर उसके अर्थ में चमत्कार या परिवर्तन प्रस्तुत कर देते हैं।

भेद—प्रत्यय दो प्रकार के माने गये हैं—(अ) कृत प्रत्यय, (ब) तद्धित प्रत्यय।

(अ) कृत प्रत्यय—क्रिया या धातु के साथ जो प्रत्यय लगाए जाते हैं, उनको कृत प्रत्यय कहते हैं और इनसे बनने वाले शब्दों को कृदन्त कहते हैं।

कृदन्त शब्दों के पाँच प्रकार माने गये हैं जो निम्नवत् हैं:—

(1) कर्तृवाचक—ये वे शब्द हैं जो क्रिया के कर्ता का बोध कराते हैं। जैसे—

धातु/क्रिया		**प्रत्यय**	**कृदन्त**
1. पाठ	—	अक	पाठक
2. वाच	—	अक	वाचक
3. भूल	—	अक्कड़	भुलक्कड़
4. तैर	—	आक	तैराक
5. चल	—	आऊ	चलाऊ
6. लड़	—	आका	लड़ाका
7. खेल	—	आड़ी	खिलाड़ी
8. लूट	—	एरा	लुटेरा
9. वच्	—	ता	वक्ता
10. होना	—	हार	होनहार

(2) कर्मवाचक—ये वे शब्द हैं जो कर्म का बोध कराते हैं। जैसे—

धातु/क्रिया		**प्रत्यय**	**कृदन्त**
1. खेल	—	औना	खिलौना
2. दा	—	ना	दाना
3. ओढ़	—	ना	ओढ़ना
4. चल	—	नी	चलनी

(3) **करणवाचक**—ये वे शब्द हैं जो साधन (करण) का बोध कराते हैं। जैसे—

धातु/क्रिया		प्रत्यय	कृदन्त
1. ढक	—	अन	ढक्कन
2. मेल	—	आ	मेला
3. फाँस	—	ई	फाँसी
4. झाड़	—	ऊ	झाड़ू
5. चल	—	नी	चलनी

(4) **भाववाचक**—ये वे शब्द हैं जो किसी भाव या क्रिया के व्यापार का बोध कराते हैं। जैसे—

धातु/क्रिया		प्रत्यय	कृदन्त
1. पुकार (ना)	—	अ	पुकार
2. बैठ	—	अक	बैठक
3. फिसल	—	अन	फिसलन
4. बिक	—	आऊ	बिकाऊ
5. जोड़	—	आ	जोड़ा
6. उड़	—	आन	उड़ान
7. घूम	—	आव	घुमाव
8. दिखा	—	आवा	दिखावा
9. रुक	—	आवट	रुकावट
10. घबरा (ना)	—	आहट	घबड़ाहट
11. धमक	—	ई	धमकी
12. काट	—	औती	कटौती
13. बढ़	—	ती	बढ़ती
14. कर	—	नी	करनी

(5) **क्रियाबोधक**—वे शब्द जो क्रिया के सम्पन्न होने का बोध कराते हैं। जैसे—

धातु/क्रिया		प्रत्यय	कृदन्त
1. चल	—	हुआ (वर्तमान काल)	चलता हुआ।
2. सुन	—	हुआ (वर्तमान काल)	सुनता हुआ।
3. चल	—	हुआ (प्रेरणार्थक)	चलाता हुआ।
4. चल	—	हुआ (भूतकाल)	चला हुआ।
5. चल	—	हुई (वर्तमान काल)	चलती हुई।

विशेष—ये कृदन्त शब्द संज्ञा और विशेषण का कार्य भी करते हैं और ये सभी का रूपों में प्रस्तुत हो सकते हैं। जैसे—

संज्ञा— 1. **टहलना** स्वास्थ्य के लिए उत्तम है। **(कर्ता)**
2. तुम्हें खूब **टहलना** चाहिए। **(कर्म)**
3. **टहलने** से शरीर स्वस्थ होता है। **(करण)**
4. वह **टहलने** के लिए आया था। **(सम्प्रदान)**
5. **टहलने** से आलस्य दूर होता है। **(अपादान)**
6. **टहलने** के बहाने मनोरंजन भी हो जाता है। **(सम्बन्ध)**
7. **टहलने** में वे कभी आलस्य नहीं दिखाते। **(अधिकरण)**

विशेषण—पढ़ने वाले विद्यार्थी, रोता हुआ बालक, खेलते हुए बच्चे, चरते हुए पशु आदि पदों में पढ़ने वाले, रोता हुआ, खेलते हुए, चरते हुए शब्द-युग्म विशेषण हैं।

विशेष—कृत प्रत्ययों के संयोग से विशिष्ट संज्ञा एवं विशेषण शब्द भी निर्मित होते हैं। इनमें कुछ इस प्रकार हैं—

संज्ञा—

हँस	— ई	=	हँसी		लूट	— एरा	=	लुटेरा
खेल	— औना	=	खिलौना		पूज	— आ	=	पूजा
उड़	— आन	=	उड़ान		गा	— वैया	=	गवैया
तैर	— आक	=	तैराक		बैठ	— क	=	बैठक
गिन	— ती	=	गिनती		चल	— न	=	चलन

विशेषण—

घट	— इया	=	घटिया	चाल	— ऊ	=	चालू
होन	— हार	=	होनहार	टिक	— आऊ	=	टिकाऊ
पठ	— नीय	=	पठनीय	रम	— अनीय	=	रमणीय
लिख	— इत	=	लिखित	नीति	— ज्ञ	=	नीतिज्ञ

(ब) तद्धित प्रत्यय—क्रिया या धातु के अतिरिक्त अन्य शब्दों (संज्ञा, सर्वनाम अथवा विशेषण) के अन्त में लगने वाले प्रत्यय तद्धित प्रत्यय कहलाते हैं। इनसे बनने वाले शब्दों को तद्धितांत शब्द कहते हैं।

इसके प्रमुख प्रकार निम्नवत् हैं—

(1) कर्तृवाचक—ये प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण के अन्त में लगकर कर्तृवाचक शब्दों का निर्माण करते हैं। जैसे—

सोना	— आर	=	सुनार/ सोनार	भेद	— ई	=	भेदी
अफीम	— ची	=	अफीमची	दुःख	— इया	=	दुःखिया
पान	— दान	=	पानदान	मच्छर	— दानी	=	मच्छरदानी
लकड़	— हारा	=	लकड़हारा	थाना	— दार	=	थानेदार
पानी	— हारा	=	पनिहारा	धन	— वान	=	धनवान

(2) भाववाचक—ये प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण [illegible] भाववाचक संज्ञा शब्दों का निर्माण करते हैं। जैसे—

मत	— अन्तर	= मतान्तर	बूढ़ा	— आपा	= बुढ़ापा
अच्छा	— आई	= अच्छाई	पंच	— आयत	= पंचायत
मीठा	— आस	= मिठास	स्वर्ण	— इम	= स्वर्णिम
चिकना	— आहट	= चिकनाहट	नीला	— इमा	= नीलिमा
बाप	— औती	= बपौती	संख्या	— इकी	= सांख्यिकी
अग्र	— इम	= अग्रिम	गर्म	— ई	= गर्मी
पूर्ण	— इमा	= पूर्णिमा	चोर	— ई	= चोरी
खुश	— ई	= खुशी	ठंड	— अक	= ठंडक
जय	— कार	= जयकार	धिक्	— कार	= धिक्कार
मर्दान	— गी	= मर्दानगी	मधुर	— ता	= मधुरता
संग	— अत	= संगत	नेता	— त्व	= नेतृत्व
घन	— त्व	= घनत्व	नमक	— ईन	= नमकीन
लड़का	— पन	= लड़कपन	भोला	— पन	= भोलापन

(3) गुणवाचक—ये प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण शब्दों के अन्त में जुड़कर गुणवाचक शब्दों का निर्माण करते हैं। जैसे—

प्यास	— आ	= प्यासा	मल	— इन	= मलिन
फूल	— आ	= फूला	श्रद्धा	— आलु	= श्रद्धालु
अद्य	— तन	= अद्यतन	राजपूत	— आना	= राजपूताना

[विशेष—इक प्रत्यय बहुप्रचलित प्रत्यय है। इसके संयोग से शब्दों के प्रारम्भिक स्वरों में इस प्रकार परिवर्तन होता है—अ = आ; इ, ई, ए = ऐ; उ, ऊ, ओ = औ एवं ऋ = आर। जैसे—]

अंश	— इक	= आंशिक	अर्थ	— इक	= आर्थिक
अधुना	— इक	= आधुनिक	तंत्र	— इक	= तांत्रिक
अलंकार	— इक	= आलंकारिक	प्रसंग	— इक	= प्रासंगिक
परम्परा	— इक	= पारम्परिक	परलोक	— इक	= पारलौकिक
प्रमाण	— इक	= प्रामाणिक	वर्ष	— इक	= वार्षिक
व्यवहार	— इक	= व्यावहारिक	व्यापार	— इक	= व्यापारिक
संदर्भ	— इक	= सांदर्भिक	समूह	— इक	= सामूहिक
राजनीति	— इक	= राजनीतिक	समुदाय	— इक	= सामुदायिक
दिन	— इक	= दैनिक	मास	— इक	= मासिक
नीति	— इक	= नैतिक	विवाह	— इक	= वैवाहिक
देव	— इक	= दैविक	शिक्षा	— इक	= शैक्षिक
उद्योग	— इक	= औद्योगिक	बुद्धि	— इक	= बौद्धिक

ुगोल	— इक	=	भौगोलिक	भूमि	— इक	=	भौमिक
दय	— इक	=	हार्दिक	खंड	— इत	=	खंडित
ाष	— इत	=	पोषित	रच	— इत	=	रचित
र	— इष्ठ	=	वरिष्ठ	बल	— इष्ठ	=	बलिष्ठ
ठ	— ई	=	हठी	नव	— ईन	=	नवीन
ाची	— ईन	=	प्राचीन	राष्ट्र	— ईय	=	राष्ट्रीय
ानव	— ईय	=	मानवीय	भिक्षा	— उक	=	भिक्षुक
थान	— ईय	=	स्थानीय	विष	— ऐला	=	विषैला
र्ग	— ईय	=	स्वर्गीय	लम्बा	— ऊ	=	लम्बू
ाम	— उक	=	कामुक	राज	— कीय	=	राजकीय
ोटा	— ऊ	=	छोटू	स्व	— कीय	=	स्वकीय
न	— ऐला	=	वनैला	अद्य	— तन	=	अद्यतन
रु	— तर	=	गुरुतर	लघु	— तम	=	लघुतम
हत्	— तर	=	वृहत्तर	कृ	— तव्य	=	कर्तव्य
रा	— तन	=	पुरातन	दुकान	— दार	=	दुकानदार
हत्	— तम	=	महत्तम	शक्ति	— मान	=	शक्तिमान
मीन	— दार	=	ज़मीनदार	सम्मान	— पूर्वक	=	सम्मानपूर्वक
ाना	— दार	=	थानेदार	बुद्धि	— मान	=	बुद्धिमान
धि	— पूर्वक	=	विधिपूर्वक	यथा	— वत्	=	यथावत्
न्न	— मय	=	अन्नमय	तपस्	— वी	=	तपस्वी
नः	— मय	=	मनोमय	माया	— वी	=	मायावी
र्व	— वत्	=	पूर्ववत्	क्रम	— शः	=	क्रमशः

(4) अपत्यवाचक (सम्बन्धवाचक)—इन प्रत्ययों का उपयोग पुत्र या वंश अथवा गुणों का ज्ञान कराने के लिए किया जाता है। [इसके अन्तर्गत मूलतः अ, इ, एय, अयन, आयन का प्रयोग किया जाता है। इनके संयोग से शब्द के प्रारम्भिक स्वर में क्रमशः इस प्रकार परिवर्तन हो जाता है—अ = आ; इ, ई, ए = ऐ; उ, ऊ, ओ = औ एवं ऋ = आर्। जैसे—]

नु	— अ	=	दानव	मनु	— अ	=	मानव
पांडु	— अ	=	पांडव	विष्णु	— अ	=	वैष्णव
शिव	— अ	=	शैव	दिति	— अ	=	दैत्य
जिन	— अ	=	जैन	कुशल	— अ	=	कौशल
पुत्र	— अ	=	पौत्र	मुनि	— अ	=	मौन
दशरथ	— इ	=	दाशरथि	मरुत	— इ	=	मारुति
बल्मीक	— इ	=	बाल्मीकि	सरथ	— इ	=	सारथि
पृथा	— इ	=	पार्थ	कुंती	— एय	=	कौन्तेय
गंगा	— एय	=	गांगेय	राम	— अयन	=	रामायण

विशेष—'य' प्रत्यय के संयोग से (प्रायः सम्बन्ध वाचक) तद्धितांत शब्दों के निर्मा उक्तानुसार ही परिवर्तन होता है। जैसे—

				दम्पति	— य	=	दाम्पत्य
कवि	— य	=	काव्य	पश्चात	— य	=	पाश्चात्य
महात्मा	— य	=	माहात्म्य	लवण	— य	=	लावण्य
वत्सल	— य	=	वात्सल्य	दिति	— य	=	दैत्य
विधवा	— य	=	वैधव्य	विराग	— य	=	वैराग्य
दीन	— य	=	दैन्य	चेतन	— य	=	चैतन्य
कुमार	— य	=	कौमार्य	सुन्दर	— य	=	सौन्दर्य
शूर	— य	=	शौर्य				

विशेष—संज्ञा, सर्वनाम एवं विशेषण शब्दों के साथ ही तद्धित प्रत्यय लगाकर अ सम्बन्धवाचक शब्दों की रचना की जाती है—

ससुर	— आल	=	ससुराल	नानी	— आल	=	ननिहाल
चाचा	— एरा	=	चचेरा	मामा	— एरा	=	ममेरा
भान (भगिनीज)	— जा	=	भानजा	भती (भ्रातृज)	— जा	=	भतीजा

(5) ऊनार्थक—ये वे प्रत्यय हैं जिनके सहयोग से ऊनता (लघुता) बोधक शब्दों की र की जाती है। जैसे—

चोटी	— इया	=	चुटिया	डिब्बा	— इया	=	डिबिया
कली	— इका	=	कलिका	पत्र	— इका	=	पत्रिका
रस्सा	— ई	=	रस्सी	टोकरा	— ई	=	टोकरी
चिमटा	— ई	=	चिमटी	साँप	— ओला	=	सँपोला
खाट	— ओला	=	खटोला	आँत	— ड़ी	=	आँतड़ी
पंख	— ड़ी	=	पंखुड़ी	बुरा	— सा	=	बुरा-सा

[लोक बोलियों में ऊनार्थक शब्दों का व्यापक प्रयोग मिलता है। ईर्ष्या, आक्रोश, प्रेम भावुकता के क्षणों में ऐसे प्रयोग होना वहाँ सामान्य बात है।]

(6) स्त्री बोधक—स्त्री बोधक शब्दों की व्युत्पत्ति हेतु इन प्रत्ययों का प्रयोग किया ज है। इसके कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नवत् हैं—

शिष्य	— आ	=	शिष्या	वैश्य	— आ	=	वैश्या
जेठ	— आनी	=	जेठानी	पण्डित	— आनी	=	पंडितानी
नायक	— इका	=	नायिका	लेखक	— इका	=	लेखिका
बाघ	— इन	=	बाघिन	सरोज	— इनी	=	सरोजिनी
भुजंग	— इनी	=	भुजंगिनी	चूहा	— इया	=	चुहिया
बंदर	— इया	=	बंदरिया	हरिण	— ई	=	हरिणी (हिरनी)

बहन	— ओई	=	बहनोई	ननद	— ओई	=	ननदोई

[उल्लेखनीय है कि बहनोई या ननदोई का रिश्ता बहन या ननद से बनता है।]

पति	— नी	=	पत्नी	नट	— नी	=	नटनी
मोर	— नी	=	मोरनी	शेर	— नी	=	शेरनी

अन्य उपादेय प्रत्यय—अपनी विकास-यात्रा में हिन्दी भाषा ने बहुत-से प्रत्ययों का उपयोग कर अपना शब्दकोश समृद्ध किया है। ये प्रत्यय संस्कृत या हिन्दी ही नहीं अरबी-फ़ारसी के भी हो सकते हैं। अब अंग्रेजी के प्रत्यय भी प्रयुक्त होने लगे हैं।

इनमें से कुछ प्रमुख प्रत्यय हम इस प्रकार देख सकते हैं—

संस्कृत-प्रत्यय

संदेह	— आस्पद	=	संदेहास्पद	दिवा	— कर	=	दिवाकर
साहित्य	— कार	=	साहित्यकार	व्यंग्य	— कार	=	व्यंग्यकार
नभ	— चर	=	नभचर	किम्	— चित्	=	किंचित्
कदा	— चित्	=	कदाचित्	आत्म	— ज	=	आत्मज
आत्म	— जा	=	आत्मजा	मूल	— तः	=	मूलतः
संगीत	— ज्ञ	=	संगीतज्ञ	सामान्य	— तः	=	सामान्यतः
शान्त	— इ	=	शान्ति	सौभाग्य	— वती	=	सौभाग्यवती
रत	— इ	=	रति	दुःख	— द	=	दुःखद
अन्य	— त्र	=	अन्यत्र	सर्व	— त्र	=	सर्वत्र
पयः	— द	=	पयोद	फल	— दायी	=	फलदायी
चक्र	— धर	=	चक्रधर	चन्द्र	— धर	=	चन्द्रधर
मंजु	— ल	=	मंजुल	कंठ	— स्थ	=	कंठस्थ
मनः	— हर	=	मनोहर	मध्य	— स्थ	=	मध्यस्थ

हिन्दी-प्रत्यय

भड़भूँज	— आ	=	भड़भूँजा	धम	— आका	=	धमाका
छोड़	— आरा	=	छुटकारा	खेल	— आड़ी	=	खिलाड़ी
मीठा	— आस	=	मिठास	पूज	— आरी	=	पुजारी
सूझ	— आव	=	सुझाव	बह	— आव	=	बहाव
नशा	— एड़ी	=	नशेड़ी	रस	— इया	=	रसिया
नाक	— एल	=	नकेल	भाँग	— एड़ी	=	भँगेड़ी
खट	— का	=	खटका	रख (ना)	— ऐल	=	रखैल
साँगा	— नेर	=	साँगानेर	जय	— पुर	=	जयपुर
बाड़	— मेर	=	बाड़मेर	जैसल	— मेरु (मेर)	=	जैसलमेर
बाँस	— री	=	बाँसुरी	गुण	— वंत	=	गुणवंत
खंड	— हर	=	खंडहर	चूड़ी	— हारा	=	चुड़िहारा

अरबी-फ़ारसी के प्रत्यय

खर्च	— आ	=	खर्चा	हर्ज़	— आना	=	हर्ज़ाना
अहमद	— आबाद	=	अहमदाबाद	इस्लाम	— आबाद	=	इस्लामाबाद
फ़रमा	— इश	=	फ़रमाइश	शर्म	— इंदा	=	शर्मिंदा
अफगान	— इस्तान	=	अफगानि-स्तान	पाक़	— इस्तान	=	पाक़िस्तान
बेहतर	— ईन	=	बेहतरीन	पेश	— कार	=	पेशकार
हस	— ईन	=	हसीन	यतीम	— ख़ाना	=	यतीमख़ाना
सलाह	— कार	=	सलाहकार	आदम	— खोर	=	आदमखोर
दवा	— ख़ाना	=	दवाख़ाना	जादू	— गर	=	जादूगर
चर	— गाह	=	चरागाह	मदद	— गार	=	मददगार
तबला	— ची	=	तबलची	ज़हाँ	— गीर	=	ज़हाँगीर
शाह	— ज़ादा	=	शहज़ादा	तोप	— ची	=	तोपची
इत्र	— दान	=	इत्रदान	रोशन	— दान	=	रोशनदान
इज्जत	— दार	=	इज्ज़तदार	देन	— दार	=	देनदार
परदा	— नशीन	=	परदानशीन	शर्म	— नाक	=	शर्मनाक
दर्द	— नाक	=	दर्दनाक	वकालत	— नामा	=	वकालतनामा
चाल	— बाज़	=	चालबाज़	हथियार	— बंद	=	हथियारबंद
मेज	— बान	=	मेजबान	दर	— बान	=	दरबान
अक़्ल	— मंद	=	अक्लमंद	मेहर	— बान	=	मेहरबान
उम्मीद	— वार	=	उम्मीदवार	मिलन	— सार	=	मिलनसार
तालाब	— शाही	=	तालाबशाही	घड़ी	— साज़	=	घड़ीसाज़

अंग्रेजी के प्रत्यय

गांधी	— इज़्म	=	गांधीज़्म	बुद्ध	— इज़्म	=	बुद्धिज़्म
हिन्दू	— इज़्म	=	हिन्दुइज़्म	कम्यून	— इस्ट	=	कम्युनिस्ट
सोशल	— इस्ट	=	सोशलिस्ट	कैपिटल	— इस्ट	=	कैपिटलिस्ट

□□

3

संधि

हिंदी भाषा में संधि का अर्थ दो वर्णों का मेल है। जब दो वर्ण परस्पर मिलते हैं तो एक नये वर्ण की रचना होती है उसे संधि कहा जाता है। उदाहरण के लिये ''विद्यालय'' शब्द (विद्या + आलय) मिलकर बना है। इसमें विद्या का ''आ'' और आलय का ''आ'' मिलकर ''आ'' हो गया। (आ + आ)। अर्थात् दो वर्णों के परस्पर मिलने से वर्णों का बदला हुआ रूप ही संधि है। इसे इस रूप में स्पष्टतया समझाया जा सकता है कि प्रथम शब्द की अंतिम ध्वनि (वर्ण) और दूसरे शब्द की प्रथम ध्वनि (वर्ण) के मिलने जो परिवर्तन आता है उसके परिणामस्वरूप एक नई ध्वनि का निर्माण होता है अत: दो ध्वनियों (वर्णों) के आपस में मिलने से, अथवा दो ध्वनियों या वर्णों के मेल से होने वाले विकार से जो परिवर्तन आता है, उसे संधि कहते हैं।

संधि के भेद

संधि के तीन भेद होते हैं—1. स्वर संधि, 2. व्यंजन संधि एवं 3. विसर्ग संधि।

इन पर क्रमश: विचार किया जायेगा—

1. स्वर संधि

निकटवर्ती दो स्वरों के मिलने से उत्पन्न विकार को स्वर संधि कहा जाता है। स्वरों के परस्पर संयोग से विविध प्रकार के विकार होते हैं इन्हीं के आधार पर स्वर संधि के पाँच प्रकार हैं—

दीर्घ संधि   गुण संधि   वृद्धि संधि   यण संधि   अयादि संधि

(क) दीर्घ संधि—यदि अ या आ के बाद अ या आ आता है तो ''आ'' हो जाता है, यदि इ या ई के बाद इ या ई आता है तो ''ई'' हो जाता है और यदि उ या ऊ के बाद उ या ऊ आता है तो ''ऊ'' हो जाता है। अर्थात् अ, आ + अ, आ = आ, इ, ई + इ, ई = ई, उ, ऊ + उ, ऊ = ऊ। यथा—

1. सुख + अन्त = सुखान्त (अ + अ = आ)
2. छात्र + आवास = छात्रावास (अ + आ = आ)
3. परीक्षा + अर्थी = परीक्षार्थी (आ + अ = आ)
4. विद्या + आलय = विद्यालय (आ + आ = आ)
5. मुनि + इन्द्र = मुनीन्द्र (इ + इ = ई)

6. नदी + ईश = नदीश (ई + ई = ई)
7. कपि + ईश = कपीश (इ + ई = ई)
8. कवि + इन्द्र = कवीन्द्र (इ + इ = ई)
9. वधू + उत्सव = वधूत्सव (ऊ + उ = ऊ)
10. कटु + उक्ति = कटूक्ति (उ + उ = ऊ)
11. सरयू + ऊर्मि = सरयूर्मि (ऊ + ऊ = ऊ)

(ख) गुण संधि—गुण संधि में यदि अ या आ के बाद इ या ई आता है तो उसके स्थान "ए" हो जाता है। यदि अ या आ के बाद उ या ऊ आता है तो उसके स्थान पर "ओ" हो ज है और यदि अ या आ के बाद ऋ आता है तो उसके स्थान पर "अर्" हो जाता है। अथ 1. अ, आ + इ, ई = "ए"। 2. अ या आ + उ, ऊ = "ओ"। 3. अ या आ + ऋ = "अर्

उदाहरणार्थ—

1. देव + इन्द्र = देवेन्द्र (अ + इ = ए)
2. सुर + इन्द्र = सुरेन्द्र (अ + इ = ए)
3. रमा + ईश = रमेश (आ + ई = ए)
4. अखिल + ईश = अखिलेश (अ + ई = ए)
5. महा + उदय = महोदय (आ + उ = ओ)
6. सर्व + उदय = सर्वोदय (अ + उ = ओ)
7. पर + उपकार = परोपकार (अ + उ = ओ)
8. देव + ऋषि = देवर्षि (अ + ऋ = अर्)
9. सप्त + ऋष = सप्तर्षि (अ + ऋ = अर्)
10. महा + ऋषि = महर्षि (आ + ऋ = अर्)

(ग) वृद्धि संधि—इस संधि में अ या आ के बाद ए या ऐ आने पर "ऐ" हो जाता है त अ या आ के बाद ओ या औ आये तो उसके स्थान पर "औ" हो जाता है। अर्थात् 1. अ, + ए, ऐ = "ऐ", 2. अ, आ + ओ, औ = "औ"। उदाहरण के लिये—

1. एक + एक = एकैक (अ + ए = ऐ)
2. सदा + एव = सदैव (आ + ए = ऐ)
3. मत + एक्य = मतैक्य (अ + ए = ऐ)
4. महा + ऐश्वर्य = महैश्वर्य (आ + ऐ = ऐ)
5. परम + औदार्य = परमौदार्य (अ + औ = औ)
6. परम + ओजस्वी = परमौजस्वी (अ + ओ = औ)
7. महा + औषधि = महौषधि (आ + औ = औ)
8. महा + ओज = महौज (आ + ओ = औ)

(घ) यण संधि—यण संधि में इ, ई उ, ऊ, ऋ के पश्चात कोई अन्य स्वर आता है तो के स्थान पर "य" होजाता है, उ, ऊ के स्थान पर "व" हो जाता है और ऋ के स्थान पर "

हो जाता है। अर्थात् 1. इ या ई + अन्य स्वर = ''य''। 2. उ या ऊ + अन्य स्वर = ''व''। 3. ऋ + अन्य स्वर = ''र''। उदाहरणार्थ—

1. इति + आदि = इत्यादि (इ + आ = या)
2. वि + असन = व्यसन (इ + अ = य)
3. अति + अधिक = अत्यधिक (इ + अ = य)
4. अति + आचार = अत्याचार (इ + आ = या)
5. प्रति + उपकार = प्रत्युपकार (इ + उ = यु)
6. सु + आगत = स्वागत (उ + आ = वा)
7. वधू + आगमन = वध्वागमन (ऊ + आ = वा)
8. सु + अच्छ = स्वच्छ (उ + अ = व)
9. मातृ + आज्ञा = मात्राज्ञा (ऋ + आ = रा)
10. पितृ + आज्ञा = पित्राज्ञा (ऋ + आ = रा)

(ङ) अयादि संधि—अयादि संधि में ए, ऐ, ओ, औ का किसी स्वर से मेल होने पर ए = अय्, ऐ = आय्, ओ = अव् और औ = आव् हो जाता है। अर्थात् = ए + अ = अय्, ऐ + अ = आय्, ओ + अ = अव्, औ + अ = आव्। उदाहरणार्थ—

1. ने + अन = नयन (ए + अ = अय)
2. चे + अन = चयन (ए + अ = अय)
3. नै + अक = नायक (ऐ + अ = आय)
4. नै + इका = नायिका (ऐ + इ = आयि)
5. भो + अन = भवन (ओ + अ = अव)
6. पो + इत्र = पवित्र (ओ + इ = अवि)
7. पौ + अन = पावन (औ + अ = आव)
8. नौ + इक = नाविक (औ + इ = आवि)

स्वर संधि के अलावा दो संधियाँ—1. व्यंजन संधि और 2. विसर्ग संधि प्रायः संस्कृत में प्रयुक्त होती हैं लेकिन हिंदी भाषा में भी इनका प्रयोग होता है। अतः यहाँ इन पर विचार किया जा रहा है।

2. व्यंजन संधि

जब समीप आने वाले दो वर्णों में से पहला वर्ण व्यंजन हो और दूसरा स्वर अथवा व्यंजन हो तो उनमें होने वाली संधि को व्यंजन संधि कहा जाता है। संस्कृत में इसे ''हल्'' संधि कहा जाता है। इसके नियम निम्नलिखित हैं—

(अ) यदि प्रत्येक वर्ग के प्रथम वर्ण अर्थात् ''क्'' ''च्'' ''ट्'' ''त्'' ''प्'' के बाद किसी वर्ग का तृतीय या चतुर्थ वर्ण आये या य, र, ल, व या कोई स्वर आये तो ''क्'' ''च्'' ''ट्'' ''त्'' ''प्'' के स्थान पर अपने ही वर्ग का तृतीय वर्ण अर्थात् ''ग्'' ''ज्'' ''ड्'' ''द्'' ''ब्'' हो जाता है। जैसे—

वाक् + ईश = वागीश
सत् + वाणी = सद्वाणी
अच् + अंत = अजंत
तत् + रूप = तद्रूप
अप् + इंधन = अबिंधन

प्राक् + ऐतिहासिक = प्रागैतिहासिक
षट् + दर्शन = षड्दर्शन
भगवत् + गीता = भगवद्गीता
जगत् + आनंद = जगदानंद
शप् + द = शब्द

(आ) यदि प्रत्येक वर्ग के पहले वर्ण अर्थात् ''क्'', ''च्'', ''ट्'', ''त्'', ''प्'' के बाद ''न'' या ''म'' आये तो ''क्'', ''च्'', ''ट्'', ''त्'', ''प्'' अपने वर्ग के पंचम वर्ण अर्थात् ''ङ्'', ''ञ्'', ''ण्'', ''न्'', ''म्'' में बदल जाता है। यथा—

वाक् + मय = वाङ्मय
जगत् + नाथ = जगन्नाथ
षट् + मास = षण्मास

जगत् + माता = जगन्माता
उत् + नयन = उन्नयन
अप् + मय = अम्मय

(इ) यदि ''म्'' के बाद कोई स्पर्श व्यंजन आये तो ''म्'' अनुस्वार में बदल जाता है। जैसे—

अहम् + कार = अहंकार
सम् + तोष = संतोष

सम + गम = संगम
किम् + चित् = किंचित्

(ई) यदि ''त्'' या ''द्'' के बाद ''ल'' आये तो ''त्'' या ''द्'' ''ल'' में बदल जाता है। यथा—

उत् = लास = उल्लास
उत् + लेख = उल्लेख

उद् + लिखित् = उल्लिखित
तद् + लीन = तल्लीन

(उ) यदि ''त्'' या ''द्'' के बाद ''ज्'' या ''झ्'' हो तो वह ''ज्'' में बदल जाता है। जैसे—

सत् + जन = सज्जन
उत् + झटिका = उज्झटिका

जगत् + जननी = जगज्जननी
उद् + ज्वल = उज्ज्वल

(ऊ) यदि ''त्'' या ''द्'' के बाद ''श'' हो तो ''त्'' या ''द्'' का ''च्'' और ''श्'' का ''छ्'' हो जाता है। जैसे—

उत् = श्वास = उच्छ्वास
सत् + शास्त्र = सच्छास्त्र

उत् + शिष्ट = उच्छिष्ट
तत् + शोभा = तच्छोभा

(ए) यदि ''त्'' या ''द्'' के बाद ''च'' या ''छ'' हो तो ''त्'' या ''द्'' का ''च्'' हो जाता है। जैसे—

उत् + चारण = उच्चारण
सत् + चरित्र = सच्चरित्र

उत् + चरित = उच्चरित
सद् + चित् = सच्चित्

(ऐ) यदि ''त्'' या ''द्'' के बाद ''ह'' हो तो त्, द् के स्थान पर ''द'' और ''ह'' के स्थान पर ''ध'' हो जाता है। जैसे—

उत् + हार = उद्धार　　　　सिद् + हार्थ = सिद्धार्थ

तत् + हित = तद्धित　　　　वृत् + हा-वृद्धा

(ओ) जब पहले पद के अंत में स्वर हो और आगे के पद का पहला वर्ण "छ" हो तो "छ" के स्थान पर "च्छ" हो जाता है। यथा—

अनु + छेद = अनुच्छेद　　　　प्रति + छाया = प्रतिच्छाया

परि + छेद = परिच्छेद　　　　स्व + छंद = स्वच्छंद

(औ) यदि किसी शब्द के अंत में अ या आ को छोड़कर कोई अन्य स्वर आये और दूसरे शब्द के आरंभ में "स" हो तो स के स्थान पर "ष" हो जाता है। यथा—

अभि + सेक = अभिषेक　　　　परि + सद् = परिषद्

वि + सम = विषम　　　　नि + साद = निषाद

(अं) ऋ, र, ष के बाद जब कोई स्वर, कोई क वर्गीय, या प वर्गीय वर्ण अनुस्वार अथवा य, व, ह में से कोई वर्ण आए तो अंत में आने वाला "न" का "ण" हों जाता है। यथा—

भर् + अन = भरण　　　　राम् + अयन = रामायण

प्र + मान = प्रमाण　　　　भूष् + अन = भूषण

3. विसर्ग संधि

विसर्ग (:) के साथ स्वर या व्यंजन के मेल से जो विकार या परिवर्तन आता है उसे विसर्ग संधि कहते हैं। अर्थात् किसी शब्द के अंत में विसर्ग ध्वनि आती है तथा उसमें बाद में आने वाले शब्द के स्वर या व्यंजन का मेल होने के कारण जो ध्वनि विकार उत्पन्न होता है वही विसर्ग संधि है। विसर्ग से संबंधित कुछ नियम निम्नलिखित हैं—

(अ) यदि विसर्ग के पूर्व "अ" हो और बाद में "आ" हो तो दोनों का विकार "ओ" में बदल जाता है। यथा—

मनः + अविराम = मनोविराम

मनः + अभिलाषा = मनोभिलाषा

मनः + विकार = मनोविकार

यशः + अभिलाषा = यशोभिलाषा

(आ) यदि विसर्ग के पूर्व "अ" या "आ" हो और बाद में "क" और "प" वर्ण आता हो तो विसर्ग "स" में परिवर्तित हो जाता है। यथा—

तिरः + कार = तिरस्कार

भाः + कर = भास्कर

परः + पर = परस्पर

पुरः + कार = पुरस्कार

वाचः + पति = वाचस्पति

घृणाः + पद = घृणास्पद

4

समास

समास शब्द का अर्थ संक्षिप्त या छोटा करना होता है। दो या दो से अधिक शब्दों के मे
को समास कहते हैं। इस रूप में देखा जाये तो समास शब्द का उद्भव ही अर्थ को कम से क
शब्द में करने की प्रवृत्ति के कारण हुआ है। इस प्रकार समास शब्द का अर्थ होता है—संधि
अथवा संक्षिप्त करने की विधि। अर्थात् जब दो या दो से अधिक शब्द-मध्य के भाग को हट
एक नया शब्द बनाते हैं तो वह "सामासिक पद" बन जाता है। इसे इस रूप में कहा जा स
है कि दो या दो से अधिक शब्दों के मिलने से जो एक नया शब्द बनता है उसे समास कहा ज
है। सामासिक प्रक्रिया से बने शब्दों को "सामासिक-पद या समस्त-पद" कहा जाता है।
ही समस्त-पद को मूल रूप में बदलने को समास-विग्रह कहते हैं। उदाहरण के लिये—"अ
के लिये कुर्सी" यह शब्दों का समूह है, इसे संक्षिप्त करके नया शब्द "आरामकुर्सी" सामा
पद बना। इसे समास कहते हैं, तथा इसी समस्त-पद को मूल रूप में बदलने को (आराम के
कुर्सी) "समास-विग्रह" कहा जायेगा।

समास के भेद

अर्थ के आधार पर समास के छह भेद होते हैं, जो निम्नलिखित हैं—

1. तत्पुरुष समास
2. कर्मधारय समास
3. द्वन्द्व समास
4. द्विगु समास
5. बहुब्रीह समास
6. अव्ययीभाव समास

इन्हें निम्न रूप से स्पष्ट किया जा सकता है—

1. तत्पुरुष समास

जिस समास में दूसरे पद की प्रधानता होती है वह तत्पुरुष समास कहलाता है। इस स
में द्वितीया से लेकर सप्तमी तक के कारकों के परसर्ग लुप्त हो जाते हैं। यथा—

सामासिक पद	समास विग्रह	कारक परसर्ग
वन गमन	वन को गमन	कर्मकारक (को)
धन प्राप्त	धन को प्राप्त	कर्मकारक (को)
कानों सुनी	कानों से सुनी	करण कारक से (द्वारा)
रोगग्रस्त	रोग से पीड़ित	करणकारक (से)
वृद्धाश्रम	वृद्धों के लिये आश्रम	सम्प्रदान कारक (के लिये)
यात्रीघर	यात्रियों के लिये घर	संप्रदान कारक (के लिये)
वृक्ष पतित	वृक्ष से गिरा हुआ	अपादान कारक (से-अलग)
गृह गत	घर से गया हुआ	अपादान कारक (से-अलग)
करोड़ पति	करोड़ों का पति	संबंध कारक (का)
भाग्य विधाता	भाग्य का विधाता	संबंध कारक (का)
अध्ययनरत	अध्ययन में रत	अधिकरण कारक (में)
ध्यानमग्न	ध्यान में रत या लगा हुआ	अधिकरण कारक (में)

इस प्रकार दूसरे पद की प्रधानता वाला समास तत्पुरुष समास है।

2. कर्मधारय समास

जिस समास के पहले और दूसरे पद में उपमेय-उपमान अथवा विशेषण–विशेष्य का संबंध होता है, उसे कर्मधारय समास कहते हैं। जैसे—पीताम्बर = पीला है जो अम्बर, कृष्णसर्प = काला है जो सर्प। यहाँ पीला और काला दोनों विशेषण हैं और अम्बर और सर्प दोनों विशेष्य हैं। इस प्रकार विशेषण और विशेष्य अथवा उपमेय–उपमान वाले पद कर्मधारय समास कहलाते हैं। इस समास के कुछ उदाहरण हैं—

समस्त पद	विग्रह
चरणकमल	कमल के समान चरण
भवसागर	भव रूपी सागर
मुखचन्द्र	चन्द्रमा रूपी मुख
नीलाकाश	नीला है जो आकाश
मृगनयनी	मृग के समान नेत्र वाली
महापुरुष	महान है जो पुरुष आदि।

3. द्वंद्व समास

जिस समास के दोनों पद समान महत्त्व रखते हो उन्हें द्वंद्व समास कहा जाता है। अर्थात् समास का विग्रह करने पर दोनों पदों के बीच में "और" शब्द आ जाता है। जैसे—माता-पिता समस्त पद का विग्रह करने पर माता और पिता बनेगा। ब्राह्मण–यजमान = ब्राह्मण और यजमान। इस प्रकार समास के दोनों पद समान महत्त्व के हों वह द्वंद्व समास है। इसी प्रकार—दादा–दादी, दिन–रात, खान–पान, छात्र–छात्रा, जीवन–मरण, आयात–निर्यात, हानि–लाभ, सीता–राम, दाल–

रोटी और आना-जाना समस्त पद हैं, जिनका विग्रह करने पर क्रमशः दादा और दादी, दिन और रात, खान और पान, छात्र और छात्रा, जीवन और मरण आयात और निर्यात, हानि और लाभ, सीता और राम, दाल और रोटी तथा आना और जाना—जैसे रूप होंगे।

4. द्विगु समास

द्विगु समास का पहला पद संख्या वाचक होता है और दूसरा पद संज्ञा होता है, तथा समस्त पद समूह का बोधक हो वहाँ द्विगु समास होता है। जैसे ''त्रिभुज'' समस्त पद है, उसका विग्रह होगा = तीन भुजाओं का समूह। इसी प्रकार ''त्रिकोण'' समस्त पद का विग्रह होगा = तीन कोणों का समूह। अन्य उदाहरण हैं—

समस्त पद	**विग्रह**
नवरत्न	नौ रत्नों का समूह
त्रिलोक	तीन लोकों का समूह
शताब्दी	सौ वर्षों का समाहार
सतसई	सात सौ दोहों का समूह
सप्ताह	सात दिनों का समाहार
चौराहा	चार राहों का समाहार
सप्तऋषि	सात ऋषियों का समाहार

5. बहुब्रीह समास

बहुब्रीह समास में समास के पहले और दूसरे पद मिलकर किसी तीसरे पद की ओर संकेत करते हैं अर्थात् इस समास का तीसरा पद मुख्य होता है। जैसे—लम्बोदर—समस्त पद का विग्रह होगा—लम्बा है उदर जिसका = गणेश। इसी तरह वीणापाणि—समस्त पद का विग्रह होगा = वीणा है पाणि (हाथ) में जिसके = सरस्वती। इस प्रकार बहुब्रीह समास में पहले और दूसरे पद मिलकर तीसरे पद की ओर संकेत करते हैं। उदाहरणार्थ—

समस्त पद	**समास विग्रह**
हंस वाहिनी	हंस है जिसका वाहन अर्थात् सरस्वती।
महावीर	महान है जो वीर अर्थात् हनुमान।
दिगम्बर	दिशा ही हैं जिसका अम्बर अर्थात् शिव।
दशानन	दस हैं जिसके आनन अर्थात् रावण।
चतुर्भुज	चार हैं जिसकी भुजाएँ अर्थात् विष्णु।
गजानन	गज के समान आनन वाला अर्थात् गणेश।
घनश्याम	बादल के समान काला अर्थात् कृष्ण।

6. अव्ययीभाव समास

अव्ययीभाव समास में पहला पद अव्यय होता है और सामासिक पद भी अव्यय होता है। अर्थात् अव्ययीभाव समास लिंग, वचन, कारक, काल आदि की दृष्टि से बदलते नहीं हैं। जैसे—

''आजीवन'' समस्त पद का विग्रह होगा ''जीवन भर''। इसी तरह ''यथाशीघ्र'' और ''प्रतिमाह'' समस्त पद का विग्रह होगा ''जितना शीघ्र हो'' तथा ''प्रत्येक माह''। अन्य उदाहरण हैं—

समस्त पद	**विग्रह**
यथाशक्ति	शक्ति के अनुसार
भरपेट	पेट भरकर
आमरण	मरण तक
आजन्म	जन्म से लेकर
प्रतिदिन	हर दिन
आकण्ठ	गले तक
यथासंभव	जितना हो सके
प्रतिक्षण	हर क्षण

विशेष – कर्मधारय और बहुब्रीह समास में अंतर

कर्मधारय समास के दोनों पदों में विशेषण–विशेष्य तथा उपमेय–उपमान का संबंध होता है, जबकि बहुब्रीह समास में तीसरा पद महत्त्वपूर्ण होता है या इस प्रकार कहा जा सकता है कि दोनों पद मिलकर किसी तीसरे पद की ओर संकेत करते हैं। उदाहरणार्थ—''पीताम्बर'' = पीला है जो अम्बर (विशेषण–विशेष्य) = कर्मधारय समास। तथा ''पीताम्बर'' = पीला है अम्बर जिसका (विष्णु) = बहुब्रीह समास।

द्विगु और बहुब्रीह समास

द्विगु और बहुब्रीह समास में भी अंतर होता है। द्विगु समास का पहला पद संख्या वाचक होता है, जबकि बहुब्रीह समास के दोनों पद मिलकर किसी तीसरे पद की ओर संकेत करते हैं। उदाहरण के लिये ''त्रिदेव'' = तीन देवों का समूह (द्विगु समास) तथा ''त्रिलोचन'' = तीन हैं लोचन जिसके (शिव)—बहुब्रीह समास।

संधि और समास में अंतर

संधि और समास में अंतर होता है। संधि में दो वर्णों का मेल होता है जबकि समास में दो या दो से अधिक शब्दों की कमी न होकर, उनके समीप आने के कारण पहले शब्द की अंतिम ध्वनि और दूसरे शब्द की प्रारंभिक ध्वनि में अंतर आ जाता है। यथा महान + आत्मा से ''महात्मा'' शब्द की अंतिम ध्वनि ''न'' और आत्मा शब्द की प्रारंभिक ध्वनि ''आ'' के मेल से ''महात्मा'' शब्द बन गया। साथ ही जहाँ संधि दो वर्णों का मेल होती है, वहीं समास दो शब्दों का मेल होता है। ☐☐

5

संज्ञा

किसी व्यक्ति, वस्तु, जानवर, भाव, गुण एवं स्थान आदि के नाम को संज्ञा कहते हैं, जैसे—राम, पुस्तक, मिठास आदि।

संज्ञा के भेद—मुख्यत: संज्ञा तीन प्रकार की होती है—

1. व्यक्तिवाचक संज्ञा (Proper noun)
2. जातिवाचक संज्ञा (Common noun)
3. भाववाचक संज्ञा (Abstract noun)

(1) व्यक्तिवाचक संज्ञा (Proper noun)—व्यक्ति विशेष, वस्तु विशेष अथवा स्थान विशेष के नाम को व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं अर्थात् जिस संज्ञा से किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान विशेष का बोध हो उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहा जाता है।

व्यक्ति विशेष—राम, रहीम, विमला, विमलेश, मुकेश, जनमेजय, शकुंतला, निहारिका, रश्मि, श्रेयांश, कृष्ण, दिनेश, राकेश, सार्थक, संगीता, संस्कृति, रक्षिता।

वस्तु विशेष—रामायण, मेघदूत, पुराण, मारुतिकार, खेतान पंखा, लाइफबॉय साबुन, रेमंड सूट, रीटा मशीन.

स्थान विशेष—हवामहल, पुष्कर, गंगा, मेड़ता, राजघाट, अरावली।

(2) जातिवाचक संज्ञा (Common noun)—जिस संज्ञा से किसी प्राणी, वस्तु अथवा स्थान की पूरी जाति या पूरे वर्ग का बोध होता है, उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं।

प्राणी—मनुष्य, नारी, लड़की, गाय, सेना, पशु–पक्षी, विद्यार्थी।

वस्तु—पुस्तक, साबुन, अनाज, मशीन, सोना, गहना, कलम, कुर्सी, गिलास।

स्थान—पहाड़, गाँव, नदी, नगर, भवन, पाठशाला, रंगमंच, जलाशय।

(3) भाववाचक संज्ञा (Abstract Noun)—किसी शब्द से किसी व्यक्ति, वस्तु और स्थान के गुण, दोष, दशा या अवस्था आदि का ज्ञान हो उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं अर्थात् किसी भाव, अवस्था, गुण अथवा दशा के नाम को भाववाचक संज्ञा कहते हैं।

(विशेष—कुछ विद्वान् अंग्रेजी व्यापकरण का अनुसरण करते हुए हिन्दी में भी (1) समुदायवाचक संज्ञा (Collective Noun) तथा (2) द्रव्यवाचक संज्ञा (Material Noun) नाम से दो और भेद किए हैं, किन्तु हिन्दी में ये दोनों जातिवाचक संज्ञा के अन्तर्गत ही आते हैं।

समुदायवाचक में किसी समूह का बोध होता है, जैसे—सेना, कक्षा, भीड़, पुलिस आदि। परन्तु द्रव्यवाचक में किसी द्रव्य, पदार्थ अथवा धातु का बोध होता है, जैसे—मिट्टी, घी, सोना, पीतल, चाँदि।)

भाववाचक संज्ञा बनाना—जातिवाचक संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा कुछ अव्यय पदों के साथ प्रत्यय के मेल से भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं, जैसे—

(1) जातिवाचक से भाववाचक संज्ञा—

(क) 'ता' प्रत्यय से—राष्ट्र-राष्ट्रीयता, दास-दासता, मानव-मानवता, मित्र-मित्रता, पशु-पशुता, शत्रु-शत्रुता, प्रभु-प्रभुता।

(ख) 'त्व' प्रत्यय से—कवि-कवित्व, अमर-अमरत्व, स्त्री-स्त्रीत्व, गुरु-गुरुत्व, नारी-नारीत्व, पुरुष-पुरुषत्व, देव-देवत्व, मनुष्य-मनुष्यत्व।

(ग) 'अ' प्रत्यय से—शिशु-शैशव, विभु-वैभव, गुरु-गौरव।

(घ) 'इ' प्रत्यय से—भक्त-भक्ति।

(ङ) 'ई' प्रत्यय से—नौकर-नौकरी, चाकर-चाकरी, चोर-चोरी।

(2) सर्वनाम से भाववाचक संज्ञा—

(अ) 'तव' से—अपना-अपनत्व, स्व-स्वत्व, मम-ममत्व।

(आ) 'पन' से—अपना-अपनापन, पराया-परायापन।

(इ) 'कार' से—अहं-अहंकार।

(ई) 'स्व' से—सर्व-सर्वस्व।

(3) विशेषण से भाववाचक संज्ञा—

(अ) आई प्रत्यय से—साफ-सफाई, बुरा-बुराई, अच्छा-अच्छाई, सच-सच्चाई।

(आ) 'आस' प्रत्यय से—खट्टा-खटास, मीठा-मिठास, खारा-खारास।

(इ) 'ता' प्रत्यय से—उदार-उदारता, सरल-सरलता, सुन्दर-सुन्दरता, वीर-वीरता, शूर-शूरता, सफल-सफलता, विनम्र-विनम्रता, कठोर-कठोरता।

(ई) 'य' प्रत्यय से—मधुर-माधुर्य, सुन्दर-सौन्दर्य, स्वस्थ-स्वास्थ्य, कुमार-कौमार्य।

(उ) 'पन' प्रत्यय से—खट्टा-खट्टापन, मीठा-मीठापन, पीला-पीलापन, काला-कालापन, हरा-हरापन।

(ऊ) 'त्व' प्रत्यय से—वीर-वीरत्व, शूर-शूरत्व।

(ए) 'ई' प्रत्यय से—लाल-लाली, पीला-पीली, सर्द-सर्दी।

(4) क्रिया से भाववाचक संज्ञा—

(अ) 'अ' प्रत्यय से—खेलना-खेल, लूटना-लूट, जीतना-जीत, भूलना-भूल, चलना-चाल, दौड़ना-दौड़, हारना-हार।

(आ) 'ई' प्रत्यय से—हँसना-हँसी, बेचना-बिक्री।

(इ) 'आई' प्रत्यय से—चढ़ना-चढ़ाई, पढ़ना-पढ़ाई, लड़ना-लड़ाई, लिखना-लि

(ई) 'आवट' प्रत्यय से—लिखना-लिखावट, बनाना-बनावट, थकना-थकावट, सज सजावट, टकराना।

(उ) 'आव' प्रत्यय से—चुनना-चुनाव, भरना-भराव।

(ऊ) 'आहट' प्रत्यय से—घबराना-घबराहट, गुनगुना-गुनगुनाहट, चिल्लाना-चिल्ला टकराहट।

(ए) 'न' से—लेना-देना-लेन-देन, खाना-पीना-खान-पान।

(5) अव्यय से भाववाचक संज्ञा—

(अ) 'ई' प्रत्यय से—भीतर-भीतरी, ऊपर-ऊपरी, दूर-दूरी, नजदीक-नजदीकी।

(आ) 'य' प्रत्यय से—समीप-सामीप्य।

(इ) 'इक' प्रत्यय से—परस्पर-पारस्परिक, व्यवहार-व्यावहारिक।

(ई) 'ता' प्रत्यय से—निकट-निकटता, शीघ्र-शीघ्रता।

6

सर्वनाम

जो शब्द संज्ञा शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त किये जाते हैं उन्हें सर्वनाम कहा जाता है। सर्वनाम शब्द ''सर्व'' और ''नाम'' दो शब्दों के मेल से बना है जिसका अर्थ है'' सबका नाम'' अर्थात् जो शब्द सभी नामों के स्थान पर प्रयुक्त होते हों, वे सर्वनाम कहलाते हैं। जैसे ''राम घर जा रहा है'', ''वह खाना खाकर स्कूल जायेगा''। यहाँ ''राम'' के लिये दूसरे वाक्य में ''वह'' का प्रयोग किया गया है। यहाँ ''राम'' संज्ञा शब्द है और उसके स्थान पर ''वह'' शब्द आया है, जो सर्वनाम है। सारांशत: ये कहा जा सकता है कि संज्ञा शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्दों को सर्वनाम कहा जाता है।

सर्वनाम के भेद

सर्वनाम के निम्नलिखित छह भेद हैं—जिनका वर्णन आगे किया जा रहा है—

पुरुषवाचक निजवाचक निश्चयवाचक अनिश्चयवाचक संबंधवाचक प्रश्नवाचक

(क) पुरुषवाचक सर्वनाम

वे सर्वनाम जिनका प्रयोग वक्ता (बोलने वाला), श्रोता (सुनने वाला) और अन्य व्यक्ति के लिये किया जाता है, उन्हें पुरुषवाचक सर्वनाम कहा जाता है। यथा मैं, तुम, वह आदि। यहाँ मैं, तुम, वह आदि पुरुषवाचक सर्वनाम कहलाते हैं।

पुरुषवाचक सर्वनाम के तीन प्रकार हैं—1. उत्तम पुरुष, 2. मध्यम पुरुष और 3. अन्य पुरुष।

(अ) उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम—वे सर्वनाम जिनका प्रयोग वक्ता अर्थात् बोलने वाला अपने लिये करता है उसे उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम कहा जाता है। जैसे मैं काम कर रहा हूँ। मेरा भाई पढ़ता है। हम घर जा रहे हैं। आदि। इन वाक्यों में—मैं, मेरा, हम उत्तम पुरुष कहे जाते हैं।

(ब) मध्यम पुरुषवाचक वाचक सर्वनाम—ऐसे सर्वनाम शब्द जिनका प्रयोग सुनने वाले के लिये किया जाता है वे मध्यम पुरुष सर्वनाम कहलाते हैं जैसे—तुम खाना खाओ, आप यहाँ बैठिये, तुम्हारा घर कहाँ है आदि। इन वाक्यों में—तुम, आप मध्यम पुरुष हैं।

(स) अन्य पुरुष वाचक सर्वनाम—ऐसे सर्वनाम जिनका प्रयोग अन्य व्यक्तियों के लिये किया जाता है उन्हें अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम कहा जाता है। जैसे—वह काम कर रहा है, उसने

दवा ले ली, उनकी बहिन आई है आदि। इन वाक्यों में—वह, उसने, उनकी अन्य पुरुष के उदाहरण हैं।

(ख) निजवाचक सर्वनाम

ऐसे सर्वनाम जिनका प्रयोग अपने लिये किया जाता है, वे निजवाचक सर्वनाम कहे जाते हैं। जैसे—मैं अपने आप पढ़ लूँगी, मैं अपना भोजन स्वयं बना लूँगी, मैं खुद चली जाऊँगी आदि। उपर्युक्त वाक्यों में, , अपने आप, स्वयं खुद—निजवाचक सर्वनाम के उदाहरण हैं।

(ग) निश्चयवाचक सर्वनाम

वे सर्वनाम जो किसी निश्चित वस्तु या व्यक्ति के लिये प्रयुक्त किये जाते है, उन्हें निश्चयवाचक सर्वनाम कहा जाता है। जैसे –यह मेरा घर है, इसे अभी खड़ा होना नहीं आता, यदि तुम कहो तो मैं वहाँ जाऊँ आदि। इन वाक्यों में—मेरा, इसे, मैं—निश्चयवाचक सर्वनाम हैं।

(घ) अनिश्चयवाचक सर्वनाम

वे सर्वनाम शब्द जिनका प्रयोग किसी अनिश्चित व्यक्ति, वस्तु आदि के लिये किया जाता है उन्हें अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहा जाता है। जैसे—कोई आ रहा है, किसी को मत बताना, वृक्ष से कुछ गिरा है। इन वाक्यों में—कोई, किसी, कुछ अनिश्चयवाचक सर्वनाम हैं।

(ङ) संबंधवाचक सर्वनाम

वे सर्वनाम जो एक दूसरे के साथ संबंध बताने के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं, उन्हें संबंधवाचक सर्वनाम कहा जाता है। जैसे—जो पढ़ेगा, सो पास होगा, जिसका घर है, उसका प्रवेश होगा, जिसने बनाया है, उसने अच्छा काम किया है। इन वाक्यों में, जो – सो, जिसका – उसका, जिसने – उसने—संबंध बताने के कारण संबंधवाचक सर्वनाम हैं।

(च) प्रश्नवाचक सर्वनाम

ऐसे सर्वनाम जिनका प्रयोग प्रश्न पूछने के लिये किया जाता है, इन्हें प्रश्नवाचक सर्वनाम कहा जाता है। जैसे—घर में कौन है?, राम कब लौटेगा?, रमेश किससे बातें कर रहा है? इन वाक्यों में—कौन, कब, किससे प्रश्न पूछने के कारण प्रश्नवाचक सर्वनाम हैं।

पुरुषवाचक सर्वनामों की रूप-रचना

	1. उत्तम पुरुष सर्वनाम		2. मध्यम पुरुष सर्वनाम		3. अन्य पुरुष सर्वनाम	
कारक	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	मैं, मैंने	हम, हमने	तू, तूने	तुम, तुमने	वह, उसने	वे, उन्होंने
कर्म	मुझे, मुझको	हमें, हमको	तुझे, तुझको	तुम्हें, तुमको	उसे, उसको	उन्हें, उनको
करण	मुझसे	हमसे	तुझसे	तुमसे	उससे	उनसे
संप्रदान	मेरे लिए	हमारे लिए	तेरे लिए	तुम्हारे लिए	उसके लिए	उनके लिए

अपादान	मुझसे (अलग अर्थ में)	हमसे (अलग अर्थ में)	तुझसे (अलग अर्थ में)	तुमसे (अलग अर्थ में)	उससे (अलग अर्थ में)	उनसे (अलग अर्थ में)
सम्बन्ध	मेरा, मेरी, मेरे	हमारा, हमारी, हमारे	तेरा, तेरी तेरे	तुम्हारा, तुम्हारी, तुम्हारे	उसका, उसकी, उसके	उनका, उनकी, उनके
अधिकरण	मुझमें, मुझ पर	हममें, हम पर	तुझमें, तुझ पर	तुममें, तुम पर	उसमें, उस पर	उनमें, उन पर

ध्यातव्य—सर्वनाम शब्दों में सम्बोधन नहीं होता।

❑❑

7

विशेषण

संज्ञा और सर्वनाम की विशेषता बताने वाले शब्द विशेषण कहलाते हैं। जिस शब्द की विशेषता विशेषण द्वारा बताई जाती है उसे विशेष्य कहते हैं। अर्थात् जहाँ संज्ञा की या सर्वनाम की विशेषता बताने वाले शब्दों को विशेषण कहा जाता है, वहीं जिस शब्द की विशेषता बताई जाती है उसे विशेष्य कहा जाता है। उदाहरणार्थ – दुबला आदमी यहाँ है। मोटी बिल्ली भाग रही है। इन वाक्यों में दुबला और मोटी शब्द विशेषण हैं जबकि आदमी और बिल्ली विशेष्य हैं। इस प्रकार

विशेषण और विशेष्य साथ-साथ आते हैं। विशेषण—वे शब्द है जो संज्ञा और सर्वनाम की विशेषता बताते हैं तथा विशेष्य वे हैं जिनकी विशेषता विशेषण द्वारा बताई जाती है।

विशेषण के प्रकार

विशेषण के पाँच प्रकार हैं—

1. गुणवाचक
2. संख्यावाचक
3. परिमाणवाचक
4. संकेतवाचक
5. व्यक्तिवाचक

इन पर आगे विचार किया जा रहा है।

1. गुणवाचक विशेषण—ऐसे शब्द जो संज्ञा तथा सर्वनाम के गुण, दोष, रंग, आका स्थान, दशा आदि का बोध कराते हैं उन्हें गुण वाचक विशेषण कहा जाता है। जैसे—काला कोट मीठा आम, ऊँची इमारत, प्राचीन मंदिर आदि में काला, मीठा, ऊँची और प्राचीन शब्द विशेष हैं क्योंकि ये कोट, आम, इमारत और मंदिर की विशेषता बता रहे हैं।

2. संख्यावाचक विशेषण—वे शब्द जो किसी संज्ञा अथवा सर्वनाम की संख्या या गणन का बोध कराते हैं उन्हें संख्या वाचक विशेषण कहा जाता है। ये दो प्रकार के हैं—

(अ) निश्चय संख्यावाचक—जैसे—दो आदमी, चार लड़कियाँ, पाँच फल। इनमें निश्चि संख्या होती है।

(ब) अनिश्चय संख्यावाचक—जिनमें संख्या निश्चित नहीं होती। जैसे—कई आदमी कुछ पुस्तकें, सब लोग आदि।

3. परिमाण वाचक विशेषण—वे शब्द जो किसी वस्तु, पदार्थ या जगह की मात्रा, माप अथवा तोल का बोध कराते हैं उन्हें परिमाण वाचक विशेषण कहा जाता है। इसके दो भेद हैं—

(अ) निश्चित परिमाण वाचक—जैसे—पाँच मीटर, दस लीटर, दो किलो आदि। अर्थात् संज्ञा सर्वनाम शब्दों के निश्चित परिमाण का बोध कराने वाले शब्द को निश्चित परिमाणवाचक विशेषण कहते हैं।

(ब) अनिश्चित परिमाण वाचक—जैसे—थोड़ा दूध, बहुत आदमी, ज्यादा भीड़ आदि। अर्थात् निश्चित माप-तोल का बोध न कराने वाले शब्दों को अनिश्चित परिमाण वाचक विशेषण कहते हैं।

4. संकेतवाचक विशेषण—ऐसे सर्वनाम, जो वाक्य में विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें संकेतवाचक विशेषण कहा जाता है। ये मूल रूप में सर्वनाम हैं, लेकिन संज्ञा की विशेषता बताते हैं, इसलिए इन्हें "सार्वनामिक विशेषण" भी कहा जाता है। उदाहरणार्थ—उस पुस्तक को लाओ, इस कलम से लिखो, कोई व्यक्ति यहाँ आए हैं। इन वाक्यों में—उस, इस, कोई शब्द "संकेतवाचक या सार्वनामिक विशेषण कहलाते हैं।

5. व्यक्तिवाचक विशेषण—ऐसे शब्द जो वास्तव में व्यक्तिवाचक संज्ञा हैं लेकिन वाक्य में विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, वे "व्यक्तिवाचक विशेषण" कहलाते हैं। जैसे—बीकानेरी भुजिया, बनारसी साड़ी, कश्मीरी सेव आदि।

यहाँ बीकानेरी, बनारसी, कश्मीरी संज्ञा शब्द होते हुए भी विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। अतः ये व्यक्तिवाचक विशेषण हैं।

8

क्रिया

क्रिया का अर्थ करना होता है। अर्थात् वाक्य में जिस शब्द के प्रयोग में किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा स्थान के विषय में कुछ विधान किया जाता है या जानकारी दी जाती है उसे क्रिया कहा जाता है। संस्कृत में क्रिया को ''धातु'' कहा जाता है। अर्थात् मूल शब्द, जिसमें विकार होने से क्रिया बनती है '' धातु '' कहलाती है, हिंदी क्रिया पदों का मूल रूप ''धातु'' है। धातु में ''ना'' जोड़ने से हिंदी के क्रिया-पद बनते हैं। जैसे -पढ़ + ना = पढ़ना, लिख + ना = लिखना आदि। इस प्रकार क्रिया को इस रूप में परिभाषित किया जा सकता है

क्रिया की परिभाषा

जिस शब्द से किसी कार्य के करने या होने का बोध होता है उसे क्रिया कहते हैं।

क्रिया के भेद

हिंदी भाषा में क्रिया के तीन भेद हैं—

1. कर्म के आधार पर
2. संरचना के आधार पर
3. काल के आधार पर

इन पर आगे विचार किया जा रहा है—

1. कर्म के आधार पर

वाक्य में क्रिया शब्द का फल जिस पर पड़ रहा है अथवा क्रिया जिसे प्रभावित कर रही है, इस आधार पर किया जाने वाला भेद कर्म के अंतर्गत आता है। इस आधार पर क्रिया के दो भेद हैं—(अ) अकर्मक क्रिया तथा (ब) सकर्मक क्रिया।

(अ) अकर्मक क्रिया—जिस वाक्य में कर्म प्रयुक्त नहीं होता वहाँ क्रिया का प्रभाव कर्ता पर पड़ता है उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं, जैसे—रमा सोती है, दिनेश जाता है। इन वाक्यों में ''सोती है तथा जाता है'' में क्रिया का फल कर्ता रमा और दिनेश पर पड़ रहा है क्योंकि इनमें कर्म प्रयुक्त नहीं है अतः यहाँ अकर्मक क्रिया है।

(ब) सकर्मक क्रिया—जिस क्रिया का फल कर्ता को छोड़कर कर्म पर पड़ता है, उसे सकर्मक क्रिया कहा जाता है जैसे—सीता खाना खा रही है, रमेश बाजार जा रहा है। इन वाक्यों

में'' खा रही है और जा रहा है ' का फल खाना और बाजार पर पड़ रहा है जो कर्म हैं, अतः यहाँ क्रिया सकर्मक है। सकर्मक क्रिया भी दो प्रकार की होती है—(क) एक कर्मक क्रिया तथा (ख) द्वि कर्मक क्रिया।

(क) एक कर्मक क्रिया—जिस वाक्य में क्रिया के साथ एक कर्म प्रयुक्त होता है उसे एक कर्मक क्रिया कहा जाता है—जैसे—छात्रा विद्यालय जा रही है- इस वाक्य में एक ही कर्म ''विद्यालय'' प्रयुक्त होने से यहाँ ''एक कर्मक क्रिया'' है।

(ख) द्विकर्मक क्रिया—जिस वाक्य में क्रिया के साथ दो कर्म प्रयुक्त होते हैं उसे द्विकर्मक क्रिया कहते हैं—जैसे—माता बालक को खाना खिला रही है। इस वाक्य में ''बालक और खाना'' दो कर्म प्रयुक्त हुए हैं अतः इसे द्विकर्मक क्रिया कहा जाता है।

2. संरचना के आधार पर

किसी वाक्य में क्रिया का प्रयोग किस रूप में किया जा रहा है, कहाँ किया जा रहा है उसके आधार पर किये जाने वाले भेद, संरचना के आधार पर कहे जाते हैं। इसके पाँच प्रकार हैं—इनका वर्णन निम्न लिखित है—

संयुक्त क्रिया   नामधातु क्रिया   प्रेरणार्थक क्रिया   पूर्वकालिक क्रिया   कृदंत क्रिया

(अ) संयुक्त क्रिया—जब दो या दो से अधिक भिन्न अर्थ रखने वाली क्रियाओं का मेल हो, उसे संयुक्त क्रिया कहा जाता है। जैसे—''रमा बीमार है, दवा दे दो'' इस वाक्य में ''बीमार है'' मुख्य क्रिया है तथा ''दवा दे दो'' सहायक क्रिया है। मुख्य और सहायक दोनों क्रियाओं का संयोग होने से यहाँ संयुक्त क्रिया कहलायेगी। मुख्य क्रिया के साथ एक से अधिक सहायक क्रियाएँ भी हो सकती हैं।

(ब) नामधातु क्रिया—जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है कि संस्कृत भाषा में क्रिया रूप को ''धातु'' कहते हैं और हिंदी क्रिया-पदों का मूल रूप ही धातु है तथा धातु में ''ना'' जुड़कर क्रिया पद बनते हैं। संज्ञा, सर्वनाम, और विशेषण जब धातु के समान प्रयुक्त होते हैं तो उन्हें ''नाम धातु'' कहते हैं। इन नामधातु शब्दों में जब प्रत्यय लगाकर क्रिया का निर्माण किया जाता है तब उसे ''नाम धातु क्रिया'' कहते हैं। नाम धातु बनाने के लिये हिंदी में ''आ'' प्रत्यय लगता है। जैसे—हाथ (संज्ञा) - हथिया (नामधातु)—हथियाना (क्रिया) तथा माटी (संज्ञा) - मटिया (नामधातु)—मटियाना (क्रिया)

अपना (सर्वनाम) - अपना (नामधातु) — अपनाना (क्रिया)

सूखा (विशेषण) - सूखा (नामधातु) — सुखाना (क्रिया), लालच से ललचाना आदि।

(स) प्रेरणार्थक क्रिया—जब कर्ता स्वयं कार्य न करके किसी दूसरे व्यक्ति से कार्य करवाता है तो उसे प्रेरणार्थक क्रिया कहते हैं। अर्थात् जब कर्ता स्वयं काम न करके किसी दूसरे को उसे करने के लिये प्रेरित करे तो अकर्मक क्रिया सकर्मक बन जाती है तथा सकर्मक क्रिया द्विकर्मक बन जाती है। ऐसी क्रियाएँ प्रेरणार्थक क्रियाएँ कहलाती हैं जैसे—''माँ बच्चे को दूध पिलाती है'', माता बच्चे को लोरी सुनवाती है तथा—''रमा नौकर से काम करवाती है''। इन

वाक्यों में कर्ता स्वयं कार्य न करके किसी दूसरे को काम करने के लिये प्रेरित करता है यहाँ प्रेरणार्थक क्रिया है।

(द) पूर्वकालिक क्रिया—जब किसी वाक्य में दो क्रियाएँ प्रयुक्त हुई हों और एक क्रिया दूसरी क्रिया से पूर्व संपन्न हुई हो तो पूर्व में संपन्न होने वाली क्रिया पूर्वकालिक कहलाती है। अर्थात् वाक्य में एक क्रिया समाप्त हो जाने के बाद दूसरी क्रिया शुरू होती है समाप्त होने वाली पहली क्रिया "पूर्वकालिक क्रिया" कहलाती है। इन क्रियाओं पर वचन, पुरुष, काल आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, ये अव्यय और क्रियाविशेषण के रूप में प्रयुक्त होती हैं। मूल धातु में "कर" लगकर सामान्य क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया का रूप जा सकता है। जैसे—रमेश खाना खाकर स्कूल गया, शिक्षक के आते ही छात्र खड़े हो गये। "खाकर" और "आते ही" दोनों पूर्वकालिक क्रियाएँ हैं।

(ञ) कृदन्त क्रिया—क्रिया शब्दों में जुड़ने वाले प्रत्यय "कृत" प्रत्यय कहलाते हैं कृत प्रत्यय के योग से बने शब्द "कृदंत" कहलाते हैं। क्रिया शब्दों के अंत में प्रत्यय लग बनी क्रिया कृदंत क्रिया कहलाती है। जैसे—चल से चलना, चलता, चलकर तथा लिख लिखना, लिखता, लिखकर कृदंतक्रिया बन जाती है।

3. काल के आधार पर

इसका वर्णन 'काल' के अंतर्गत किया गया है।

सहायक क्रिया

किसी वाक्य में मूल क्रिया की सहायता करने वाले पद को सहायक क्रिया कहते हैं जैसे—राम स्कूल जाता है, मैं खाना खाता हूँ। इन वाक्यों में "है और हूँ" सहायक क्रिया हैं हिंदी की प्रमुख सहायक क्रिया "हो" है तथा इसकी क्रियार्थ संज्ञा "होना" है। "होना" क्रिया के रूप नीचे दिये जा रहे हैं। जहाँ पुलिंग और स्त्रीलिंग रूपों में अंतर है, उसे भी बताया जा रहा है।

"होना" सहायक क्रिया

पुरुष –		उत्तमपुरुष		मध्यमपुरुष		अन्यपुरुष	
काल	लिंग	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
1. वर्तमान	स्त्रीलिंग	हूँ	हैं	है	हो	है	हैं
	पुलिंग	हूँ	हैं	है	हो	है	हैं
2. भूतकाल	स्त्रीलिंग	थी	थीं	थी	थीं	थी	थीं
	पुलिंग	था	थे	था	थे	था	थे
3. भविष्य	स्त्रीलिंग	हूँगी	होंगी	होगी	होंगी	होगी	होंगी
	पुलिंग	हूँगा	होंगे	होगा	होगे	होगा	होंगे

क्रिया के प्रयोग

वाक्य में क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कभी कर्ता के अनुसार होते हैं, कभी कर्म के अनुसार होते हैं और कभी इन दोनों में से किसी के भी अनुसार नहीं होते। इस आधार पर क्रिया का प्रयोग तीन प्रकार से होता है—

(1) कर्त्तरि प्रयोग—जब क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्ता के अनुसार होते हैं तो उसे कर्त्तरि प्रयोग कहते हैं। जैसे—राम घर जाता है, मनीषा खाना खाती है।

(2) कर्मणि प्रयोग—जब क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्म के अनुसार होते हैं, तो उसे कर्मणि प्रयोग कहते हैं। जैसे—अथर्व से पुस्तक पढ़ी जाती है, वरेण्य से भोजन किया जाता है।

(3) भावे प्रयोग—जब क्रिया में लिंग, वचन और पुरुष कर्ता अथवा कर्म के अनुसार नहीं होते हैं तथा क्रिया सदैव अन्य पुरुष, पुलिंग तथा एकवचन में होती है तो क्रिया का यह प्रयोग भावे प्रयोग कहलाता है। जैसे—सोहन से खाया नहीं जाता, राम से सोया नहीं जाता।

❑❑

(16) अनजाने में या बात को बलपूर्वक कहने के लिए हिन्दी में अनुचित तरीके से पुनरुक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—अधिकांश भाग (अधिकांश), प्रातःकाल के समय (प्रातःकाल), गुप्त रहस्य (गुप्त/रहस्य), आज की वर्तमान स्थिति (आज की स्थिति/वर्तमान स्थिति)। [कोष्ठक वाले पद शुद्ध हैं।]

(17) हिन्दी में पद-क्रम का एक मान्य स्वरूप प्रचलित है। इनका तदनुसार ही प्रयोग होना चाहिए। जैसे—विदेशी सिलाई के धागे—सिलाई के विदेशी धागे, एक गुलाब और गेंदे की माला—गुलाब और गेंदे की एक माला, चाँदी-सोना = सोना-चाँदी, फूलो-फलो = फलो-फूलो। [दूसरे रूप शुद्ध हैं।]

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले कुछ प्रमुख अशुद्ध शब्दों का शुद्ध रूप इस प्रकार है—

(1) स्वर सम्बन्धी अशुद्धियाँ

अशुद्ध शब्द		शुद्ध शब्द	अशुद्ध शब्द		शुद्ध शब्द
1. अगामी	:	आगामी	2. अज़माइश	:	आजमाइश
3. अतिथी	:	अतिथि	4. अधःगति	:	अधोगति
5. अत्याधिक	:	अत्यधिक	6. अधःवस्त्र	:	अधोवस्त्र
7. अधोपतन	:	अधःपतन	8. अनुदित/अनुवादित	:	अनूदित
9. अनुपातिक	:	आनुपातिक	10. अनाधिकार	:	अनधिकार
11. अहसास	:	एहसास	12. अहिल्या	:	अहल्या
13. आधीन	:	अधीन	14. अध्यात्मिक	:	आध्यात्मिक
15. आपतकाल	:	आपत्काल/ आपातकाल	16. आशिर्वाद	:	आशीर्वाद
17. आहुति/आहुती	:	आहूति	18. आसीस	:	आशिष्/आशिस्
19. उर्जा/ऊर्ज्या	:	ऊर्जा	20. उपन्यासिक	:	औपन्यासिक
21. उष्मा	:	ऊष्मा	22. उपरोक्त	:	उपर्युक्त
23. उर्ध्व	:	ऊर्ध्व	24. ऊखली	:	ओखली
25. श्रृंखला	:	शृंखला	26. उल्लेखित	:	उल्लिखित
27. रितु/ऋतू	:	ऋतु	28. ऊषा	:	उषा
29. रिसि	:	ऋषि	30. श्रृंगार	:	शृंगार
31. एक्य	:	ऐक्य	32. बृज	:	ब्रज
33. ऐषणा	:	एषणा	34. एश्वर्य	:	ऐश्वर्य
35. कवी	:	कवि	36. कवित्री/कवियत्री	:	कवयित्री
37. केकयी	:	कैकेयी	38. केन्द्रिय	:	केन्द्रीय
39. करिये	:	कीजिए	40. कविन्द्र	:	कवीन्द्र

41. कालीदास	:	कालिदास	42. कीरीट	:	किरीट
43. कुवां/कुआं	:	कुआँ	44. छत्रिय	:	क्षत्रिय
45. छति	:	क्षति	46. गीध	:	गिद्ध
47. गान्धी/गांधी	:	गाँधी	48. गुरू	:	गुरु
49. गीताञ्जली	:	गीतांजलि	50. गूंगा	:	गूँगा
51. गूंज	:	गूँज	52. गोतम	:	गौतम
53. गृहणी	:	गृहिणी	54. चाहरदीवारी	:	चहारदीवारी/ चारदीवारी
55. चाहिये	:	चाहिए	56. चिन्ह	:	चिह्न
57. चांद	:	चाँद	58. छः	:	छह
59. छत्रछाया	:	छत्रच्छाया	60. जुखाम	:	जुकाम
61. जोत्सना	:	ज्योत्सना	62. जोग	:	योग/योग्य
63. तदोपरान्त	:	तदुपरान्त	64. तमाखू	:	तम्बाकू
65. तिथी	:	तिथि	66. त्रयमासिक	:	त्रैमासिक
67. त्रिपुरारी	:	त्रिपुरारि	68. तिलाञ्जलि	:	तिलांजलि
69. द्रष्टि	:	दृष्टि	70. तोल	:	तौल
71. द्वारिका	:	द्वारका	72. दांत	:	दाँत
73. दूकान	:	दुकान	74. दुख	:	दुःख
75. दृष्टा	:	द्रष्टा	76. देविक	:	दैविक
77. दोपहर	:	दुपहर	78. दोगुना	:	दुगुना
79. ध्वनी	:	ध्वनि	80. धोबन	:	धोबिन
81. नही	:	नहीं	82. नायका	:	नायिका
83. निर्लोभी	:	निर्लोभ	84. निर्दोषी	:	निर्दोष
85. निरपराधी	:	निरपराध	86. निरोग	:	नीरोग
87. निरसता	:	नीरसता	88. निधी	:	निधि
89. निष्कपटी	:	निष्कपट	90. नीती/नीत	:	नीति
91. निछावर/ न्यौछावर	:	न्योछावर	92. नींबू	:	नीबू
93. नीरंजन	:	निरंजन	94. नुपुर	:	नूपुर
95. परिवेक्षण	:	पर्यवेक्षण	96. पहिला	:	पहला
97. परीश्रम	:	परिश्रम	98. पड़ोसन	:	पड़ोसिन
99. पत्नि	:	पत्नी	100. परलौकिक	:	पारलौकिक

वाक्य-शुद्धि

वाक्य-संरचना में अनेक दोष हो सकते हैं। इनका परिष्कार करने हेतु यह आवश्यक है कि वाक्य-संरचना की व्यापक जानकारी हो। इनमें से कुछ प्रमुख सन्दर्भ इस प्रकार हैं—

वाक्य—वाक्य, सार्थक शब्दों का वह समूह होता है जो अभिव्यक्ति की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण होता है। जैसे—मैं आज ही परिवार सहित घर जा रहा हूँ।

वाक्य के अंग—वाक्य के दो अंग माने गये हैं—(i) उद्देश्य, (ii) विधेय।

(i) उद्देश्य—वाक्य के जिस भाग में कर्ता या कार्य करने वाले का वर्णन किया गया अथवा उसके बारे में कुछ कहा गया हो उसे उद्देश्य कहते हैं।

(ii) विधेय—वाक्य के जिस भाग में कर्ता के कार्य का वर्णन किया जाता है अथवा के कार्य के बारे में जो कुछ कहा जाता है उसे विधेय कहते हैं।

जैसे—राम बाजार गया है।

[यहाँ 'राम' कार्य कर रहा है, अतः कर्ता (उद्देश्य) है। 'बाजार गया है'—राम द्वारा कि गया कार्य है, अतः विधेय है।]

विस्तारक तत्त्व—कभी-कभी सामान्य कथन से कार्य नहीं चलता। ऐसे में विभि सन्दर्भों का प्रयोग करके अपनी बात स्पष्ट की जाती है। फलतः उद्देश्य और विधेय का पर्या विस्तार हो जाता है। इनके विस्तारक तत्त्वों को निम्नवत् देखा जा सकता है—

(i) उद्देश्य के विस्तारक तत्त्व—उद्देश्य का मुख्य अंग कर्ता होता है। लेकिन कर्ता से जु (सम्बद्ध) कुछ और भी शब्द हो सकते हैं जिनसे कर्ता को अपेक्षित बल मिलता है। इ कर्तृविशेषण या कर्ता का विस्तार कहा जाता है। इनमें कर्ता के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले सं सर्वनाम, विशेषण, क्रियार्थक संज्ञा, कृदन्त, वाक्यांश और यदा-कदा कर्म कारक भी सम्मिलि हो सकते हैं।

(ii) विधेय के विस्तारक तत्त्व—विधेय का मुख्य अंश क्रिया होती है। परन्तु कभी कभी क्रिया से अपेक्षित अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है। ऐसे में अन्य शब्दों का सहयोग लिया जा है। इन्हें विधेय के अन्तर्गत माना जाता है। विधेय के विस्तार के अन्तर्गत निम्न चार तत्त्व मा जाते हैं—

(अ) **क्रिया**—इसके अन्तर्गत मूल क्रिया को लिया जाता है।

(ब) **कर्म और उसका विस्तार**—कर्म केवल सकर्मक क्रिया के अन्तर्गत मिलते हैं। य ये दो हैं तो भी विधेय के अन्तर्गत ही गिने जाते हैं। ऐसे सभी शब्द कर्म बन सकते हैं जो क बन सकते हैं। अतः इनके विस्तार में वे सभी शब्द प्रयुक्त हो सकते हैं जो कर्ता के विस्तार प्रयुक्त हो सकते हैं।

(स) पूरक और उसका विस्तार—अपूर्ण क्रिया को पूर्णता प्रदान करने वाले शब्द प्रा संज्ञा, सर्वनाम, और विशेषण हो सकते हैं। इनका विस्तार भी अपेक्षानुसार किया जाता है।

(द) क्रिया का विस्तार—क्रिया, विधेय का मुख्य अंश होती है। यह अकर्मक व सकर्मक दोनों प्रकार की हो सकती है। क्रिया का विस्तार क्रिया विशेषण; कृदन्त; विशेषण

करण, अपादान अधिकरण प्रभृति कारकों के द्वारा होता है। कभी-कभी पूर्वकालिक क्रिया भी क्रिया का विस्तारक बन जाती है। जैसे—

1. दूरसंचार ने बालकों को शिक्षित करना शुरू कर दिया है।
2. वधू में अस्पताल में बड़ी यातना सहकर अन्तिम सांस ली।

उक्त वाक्यों को निम्नवत् विवेचित किया जा सकता है:—

क्रमांक	1	2
कर्ता	दूरसंचार	वधू
कर्ता का विस्तार	ने	ने
क्रिया	दिया है	ली
कर्म व उसका विस्तार	बालकों को	बड़ी यातना
पूरक व उसका विस्तार	शिक्षित	अस्पताल में
क्रिया का विस्तार	करना शुरू कर	सहकर अन्तिम सांस

वाक्य के प्रकार—रचना (गठन) के आधार पर वाक्य तीन प्रकार के माने जाते हैं—

(1) साधारण या सरल वाक्य—जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय होता है उसे सरल वाक्य कहते हैं। जैसे:—

1. मैं घर जा रहा हूँ। 2. वह गाना गा रहा है।

(2) मिश्रित वाक्य—जिस वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य और एक या अनेक आश्रित उपवाक्य होते हैं, उसे मिश्रित वाक्य कहते हैं। [ऐसे वाक्य में जितनी मुख्य क्रियाएँ होती हैं, उतने ही उपवाक्य होते हैं और प्रत्येक उपवाक्य आश्रयी और समानाधिकरण समुच्चय बोधक अवयवों द्वारा जुड़ा होता है। इनमें कोई भी दूसरा उपवाक्य, प्रधान उपवाक्य का समानाधिकरण वाक्य नहीं होता। जैसे—जो व्यक्ति यहाँ आया था, चोर था, पुलिस ने उसे पकड़ लिया है।]

[उक्त वाक्य में 'जो व्यक्ति यहाँ आया था'—प्रधान उपवाक्य है जबकि 'चोर था' और 'पुलिस ने उसे पकड़ लिया है'—आश्रित उपवाक्य हैं।]

(3) संयुक्त वाक्य—जिस वाक्य में एक से अधिक प्रधान उपवाक्य हों और ये विविध योजकों द्वारा परस्पर इस प्रकार जुड़े हों कि इन्हें हटा देने पर वे स्वतन्त्र अर्थ दे सकें; उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं। जैसे—

राम ने रावण को मारा और कृष्ण ने कंस को मारा।

उपवाक्य के प्रकार—उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं—

(1) प्रधान उपवाक्य—यह वाक्य का वह अंश होता है जो अन्य उपवाक्यों से जुड़ा तो होता है परन्तु अपना स्वतन्त्र स्वरूप और अर्थ रखता है। जैसे—मैं राम के घर गया और उसने दावत का निमंत्रण दिया। [यहाँ 'मैं राम के घर गया'—प्रधान उपवाक्य है।]

(2) समानाधिकरण उपवाक्य—यह वह उपवाक्य होता है जो अन्य उपवाक्यों से योजकों द्वारा जुड़ा तो रहता है परन्तु अपना स्वतन्त्र स्वरूप भी रखता है। इसे समानपदी उपवाक्य

भी कहते हैं। जैसे—प्रधान उपवाक्य के उक्त उदाहरण में 'उसने दावत का निमंत्रण दिया' प्रधान उपवाक्य का समानाधिकरण उपवाक्य है।

(3) आश्रित उपवाक्य—जो उपवाक्य अपने अर्थ की पूर्णता के लिए प्रधान उपवाक्य पर निर्भर (आश्रित) हो, आश्रित उपवाक्य कहलाते हैं। जैसे—वह राम का बेटा है जो अभी आया था।

['जो अभी आया था' आश्रित उपवाक्य है।]

वाक्य-दोष

वाक्य में यदि अशुद्ध शब्दों का प्रयोग न हुआ हो तो सामान्यतः दो प्रकार के दोष मिलते हैं, जिन्हें निम्नवत् देखा जा सकता है—

(अ) पद-क्रम सम्बन्धी दोष—'पद' उस शब्द को कहते हैं जिसमें प्रत्यय आदि के योग से विकार उत्पन्न हो जाता है। व्याकरण के नियमों का पालन करते हुए सार्थक शब्दों को यथा स्थान रखना पद-क्रम कहलाता है। इस हेतु निम्न तथ्यों का ध्यान रखना आवश्यक है—

(1) हिन्दी भाषा की वाक्य रचना में पहले कर्ता, फिर कर्म तथा अन्त में क्रिया आती है। जैसे—

राम (कर्ता) स्कूल (कर्म) जाएगा (क्रिया)।

(2) कर्ता, कर्म और क्रिया की विशेषता बताने वाले विशेषण और क्रिया विशेषण; कर्ता, कर्म और क्रिया से पहले आते हैं। जैसे—

लंकापति रावण ने जनक लली सीता को भयभीत करना चाहा।

(3) वाक्य में दो कर्म आने पर गौण कर्म को पहले तथा मुख्य कर्म को बाद में रखते हैं। जैसे—

1. मैंने भिखारी को दो रोटी दी। 2. अध्यापक छात्रों को हिन्दी पढ़ा रहा है।

[जिस कर्म को हटाने से वाक्य अधिक अपूर्ण प्रतीत हो, वह मुख्य कर्म होगा।]

(4) सर्वनाम के साथ विशेषण का प्रयोग बाद में करते हैं। जैसे—

तुम बहुत चालाक हो।

(5) प्रश्नवाचक वाक्य में यदि प्रश्न का उत्तर हाँ या नहीं में आता है तो 'क्या' शब्द वाक्य में सबसे पहले प्रयुक्त होता है। जैसे—

क्या तुम आज विद्यालय जाओगे?

(6) क्रमांक 5 के अतिरिक्त शेष प्रश्नवाचक सर्वनाम या क्रिया-विशेषण का प्रयोग क्रिया के पूर्व किया जाता है। जैसे—

तुम उसके घर क्यों गये थे? तुम्हें उससे क्या लेना है?

(7) निषेधवाचक क्रियाविशेषण का प्रयोग क्रिया के पूर्व किया जाता है। जैसे—

तुम उसके घर अब नहीं जा सकोगे।

11

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

आकर्षण, मनोरमता, रोचकता, लालित्य---प्रभृति गुण किसी भी भाषा की प्रमुख विशिष्टता माने जाते हैं। इसी के लिए अलंकार, समास, सूक्ति, लोकोक्ति/कहावत, मुहावरा आदि का यथावसर प्रयोग किया जाता है। ये वे तत्त्व हैं जो सामान्य कथन में भी लालित्य, विलक्षणता, चमत्कार आदि विशिष्टताओं का समन्वय कर उसे पाठक या श्रोता के लिए अविस्मरणीय बना देते हैं।

प्रकृति (प्रयोग एवं प्रभाव) की दृष्टि से अन्य सन्दर्भों की अपेक्षा लोकोक्ति और मुहावरे एक-दूसरे के निकटवर्ती हैं, किन्तु इन्हें समान/एक ही नहीं माना जा सकता। इनकी अपनी स्वतन्त्र पहचान स्थापित करने वाले कुछ विशिष्ट तत्त्व हैं, जिन्हें हम निम्न विवेचन द्वारा स्पष्टतः समझ सकते हैं—

मुहावरा—'मुहावरा' शब्द वस्तुतः अरबी भाषा के शब्द 'मुहावरः' से व्युत्पन्न हैं; जो हिन्दी भाषा में 'मुहावरा' और उर्दू भाषा में मुहाविरा बन गया है। इसका आशय है—अभ्यास या बातचीत। कुछ लोग इसे वाग्धारा या रोज़मर्रा भी कहते हैं। हिन्दी भाषा में यह शब्द ऐसे वाक्यांश का बोधक बन गया है, जिसके समन्वय से साधारण प्रसंग भी विलक्षण और प्रभावशाली बन जाया करता है। इसका अर्थ प्रायः लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्तियों द्वारा प्राप्त होता है।

प्रायः प्रत्येक मुहावरा वाक्यांश होता है किन्तु प्रत्येक वाक्यांश मुहावरा नहीं हो सकता। वस्तुतः मुहावरा किसी अर्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है, इस कारण इसका स्वरूप प्रायः स्थिर होता है। उसमें अनावश्यक हेर-फेर करने से उसका मुहावरापन प्रायः समाप्त हो जाता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है, "किसी भाषा या बोली में प्रयुक्त होने वाला वह वाक्य-खण्ड मुहावरा है, जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सरल, रोचक और प्रभावशाली बना देता है।"

लोकोक्ति—लोकोक्ति की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक और संस्कृत साहित्य में भी लोकोक्तियाँ मिलती हैं। यही कारण है कि इसे अनेकशः परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, "लोकोक्तियों की अभिव्यक्ति शैली मर्मस्पर्शी और विदग्ध होती है।" डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार, "लोकोक्तियों में वर्णित विषय वस्तु लोक समुदाय की समवेत अभिज्ञता और प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित होती है।" कुछ अन्य विद्वानों की मान्यता के अनुसार, "लोकोक्तियाँ एक-दो वाक्यों में व्यंजित लोक के सामूहिक अनुभव और ज्ञान की घनीभूत मणियाँ होती हैं।"

स्पष्ट है कि लोकोक्तियाँ सामान्य कथन मात्र नहीं बल्कि अनुभव सिद्ध ज्ञान की निधि है। मानव ने युग-युग से जिन तथ्यों, अनुभूतियों तथा जीवन-मूल्यों से साक्षात्कार किया है, उन्हें लोकोक्तियों के रूप में सूत्रबद्ध कर रखा है।

लोकोक्ति और कहावत—लोकोवित का सामान्य आशय है—लोक की उक्ति अर्थात् आम आदमी के मध्य प्रचलित विशेष (प्रसिद्ध) उवित। कहावत का अर्थ भी कही हुई उक्ति (बात) होता है; किन्तु समस्त उवितयाँ लोकोवित या कहावत नहीं हो सकतीं। केवल वही उक्ति लोकोक्ति के रूप में स्थापित हो पाती है जिसमें जीवनगत् अनुभवों को संक्षिप्त, विलक्षण और रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया हो।

अत: लोकोक्ति और कहावत को सामान्य दृष्टि से समान माना जा सकता है। अन्तर मात्र इतना है कि लोकोक्ति का प्रयोग पढ़े-लिखे लोगों के मध्य होता है जबकि कहावतों का प्रयोग जन सामान्य के मध्य। साहित्यिक प्रयोग के कारण लोकोक्तियों का भाषिक-परिष्कार हो जाता है और इनका कलेवर भी स्थिर बन रूढ़ हो जाता है। आम आदमी के मध्य प्रचलित कहावतें स्थान, समय आदि से प्रभावित होती हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण मुहावरे

1. **अंग-अंग ढीला होना**—शिथिल होना।
काम करते-करते अंग-अंग ढीले हो जाते हैं, अत: काया कुछ देर के लिए आराम चाहती है।
2. **अंगद का पाँव होना**—अटल/दृढ़ होना।
आप निश्चिंत रहिये, रमेश का वचन अंगद का पाँव होता है।
3. **अंगार उगलना**—क्रोध में भला-बुरा (अपशब्द) कहना।
ड्राइवर क़े नशे में होने की सूचना मिलते ही बस-यात्रियों ने उस पर आग उगलना शुरू कर दिया।
4. **अंगारे बरसना**—भीषण गर्मी पड़ना/तेज (गर्म) धूप होना।
जून माह में राजस्थान प्रान्त के कुछ भागों में अंगारे बरसते हैं।
5. **अंगूठा दिखाना**—तिरस्कार करना/अवज्ञा के साथ उपहास करना।
बुरा समय आने पर अपने लोग भी अंगूठा दिखा दिया करते हैं।
6. **अंगूर खट्टे होना**—अलभ्य वस्तु की निंदा और उपेक्षा करना।
किसी मनचाही वस्तु को पाने में असमर्थ लोग अपनी झेंप मिटाने के लिए प्राय: ऐसा प्रदर्शन किया करते हैं जैसे कि अंगूर खट्टे हों।
7. **अंजर-पंजर ढीला होना**—थक जाना/शिथिल पड़ जाना।
दिनभर की यात्रा के उपरान्त रमेश के अंजर-पंजर ढीले पड़ गये और वह तत्काल सो गया।
8. **अँतड़ियाँ कुलबुलाना**—बहुत भूख लगना।
भूखे मजदूर ने कहा, ''मालिक कुछ खाने के लिए दो। मेरी अँतड़ियाँ कुलबुलाने लगी हैं।''

9. **अँतड़ियों में बल पड़ना**—हँसते-हँसते पेट में दर्द होना।
विदूषकों की हास्यास्पद बातों से कभी-कभी अँतड़ियों में बल पड़ जाते हैं।

10. **अंधे की लाठी (लकड़ी)**—एकमात्र सहारा।
रामदास अपने बूढ़े माता-पिता के लिए अंधे की लकड़ी जैसा है।

11. **अंधे के हाथ बटेर लगना**—बिना प्रयास के लाभ होना/सहसा उपलब्धि मिलना।
आजकल बिक्री-योजनाओं से होने वाला लाभ, ठीक वैसा ही है जैसा कि अंधे के हाथ बटेर लगना।

12. **अंधों में काना राजा**—मूर्खों के मध्य अल्पज्ञानी भी प्रतिष्ठित होता है।
गाँवों के प्रतिष्ठित या शिक्षित जन आज भी प्रायः 'अंधों में काना राजा'—जैसे होते हैं।

13. **अक्ल का दुश्मन**—मूर्ख व्यक्ति।
अक्ल के दुश्मन लोगों की गतिविधियाँ देखकर कभी-कभी अपना ही सिर पीट लेने की इच्छा होने लगती है।

14. **अक्ल खर्च करना**—बुद्धि का प्रयोग करना।
थोड़ी अक्ल खर्च करो, इस सवाल का जवाब स्वतः मिल जाएगा।

15. **अड्डे पर चहकना**—अपने स्थान पर रौब दिखाना।
राजू ने उसे धमकाया, ''इस गली से बाहर निकलकर तो देख, अपने अड्डे पर तो सभी चहक लेते हैं।''

16. **अधर काटना**—बेबसी का भाव प्रकट करना।
गुंडों द्वारा पिता की पिटाई होते देख वह अधर काटकर रह गया।

17. **अपना उल्लू सीधा करना**—स्वार्थ सिद्ध करना।
आजकल के नेता और प्रशासक, देश-सेवा नहीं बल्कि अपना उल्लू सीधा करने में लगे हुए हैं।

18. **अपना (टका)-सा मुँह लेकर रह जाना**—असफलता के कारण लज्जित होना।
2004 के ओलम्पिक में जोर-शोर के साथ भाग लेने गयी भारतीय हॉकी-टीम अपना-सा मुँह लेकर रह गयी (लौट आयी)।

19. **अपनी खिचड़ी अलग पकाना**—समाज से अलग रहना/वैचारिक मतभेद रखना।
आप लोगों का संगठित होना आवश्यक है। सभी अपनी खिचड़ी अलग पकायेंगे तो कुछ होने-जाने वाला नहीं।

20. **अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारना**—अपने लिए स्वयं संकट पैदा करना।
बड़े भाई से मार-पीट कर रामू ने अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारी है, अब भोगे।

21. **अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना**—आत्मश्लाघा करना।
बहुत-से लोगों की अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने की आदत होती है।

22. **आँख का अंजन (काजल) बनाकर रखना**—अत्यधिक प्यार करना।
विवाह के फोटोग्राफ्स को वह आँख का अंजन बनाकर रखती है।

23. **आँख का काँटा होना**—बहुत बुरा होना।
सचिन तेन्दुलकर किसी भी विरोधी टीम की आँख का काँटा बन जाता है।

प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता हेतु आकाश-पाताल एक करना पड़ता है।

39. **आग उगलना**—क्रोधित होना/क्रोध में अपशब्द कहना/विनाश करना।
   1. छोटी-छोटी बातों से रुष्ट होकर आग उगलने की प्रकृति उचित नहीं होती।
   2. सीमा पर जब भारतीय तोपें आग उगलना शुरू करती हैं तो दुश्मन के होश ठिकाने लग जाते हैं।

40. **आग लगाना**—झगड़ा कराना/उत्तेजना फैलाना।
   नारद मुनि की विशेष पहचान उनकी आग लगाने की प्रवृत्ति के कारण भी है।

41. **आग लगाकर तमाशा देखना**—झगड़ा कराकर प्रसन्न होना।
   इस संसार में आग लगाकर तमाशा देखने वालों की कमी नहीं है, पर आग पर पानी डालने वाले बहुत ही कम हैं।

42. **आटा गीला होना**—संकट में पड़ना।
   खेती का समय शुरू होते ही दोनों बेटों के बीमार पड़ने और बैलों के मर जाने से रामू का आटा गीला हो गया है।

43. **आपा खोना**—संयम खोना।
   बात-बात पर आपा खो देने वाले लोगों से मित्रता न रखना ही बुद्धिमत्ता है।

44. **आवाज़ उठाना**—विरोध व्यक्त करना।
   आजकल के नेताओं की करतूतों पर सभी आवाज़ उठाने लगे हैं।

45. **आसमान के तारे तोड़ना**—असम्भव कार्य करना।
   गप्पी लोग आसमान के तारे सहज ही तोड़ लेते हैं।

46. **आसमान टूट पड़ना**—भारी विपत्ति आ जाना।
   जवान बेटे की मौत से उन पर जैसे आसमान ही टूट पड़ा है।

47. **आसमान (आकाश) से बातें करना**—बहुत ऊँचा होना/ऊँचा उठना।
   विमान रनवे पर दौड़ने के उपरान्त पलभर में आसमान से बातें करने लगा।

48. **आस्तीन का साँप**—विश्वासघाती व्यक्ति।
   इन्सान को शत्रुओं से अधिक आस्तीन के साँपों से सावधान रहना चाहिए।

49. **ईंट से ईंट बजाना**—बर्बाद करना/विनष्ट करना।
   उस गुंडे के मुँह मत लगना, नहीं तो वह तुम्हारी ईंट से ईंट बजा देगा।

50. **ईद का चाँद होना**—कभी-कभी दिखायी पड़ना।
   जब से रामू की नौकरी लगी है, वह ईद का चाँद हो गया है।

51. **उँगली उठाना**—लांछित/बदनाम करना।
   तुम्हें ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि लोगों को तुम्हारे ऊपर उँगली उठाने का मौका न मिले।

52. **उलटी गंगा बहाना**—अनहोनी/विपरीत गतिविधि करना।
   इस धर्म के कार्य में तुम सभी का साथ न देकर क्या उलटी गंगा बहाना चाहते हो?

53. **उलटे छुरे से मूँड़ना**—बेवकूफ बनाकर काम निकालना/शोषण करना।
   धूर्त लोग मौका मिलने पर किसी को भी उलटे छुरे से मूँड़ दिया करते हैं।

54. **उलटे बाँस बरेली को**—विपरीत दिशा में जाना/विपरीत कार्य करना।
कुछ लोगों की प्रवृत्ति ही 'उलटे बाँस बरेली को' वाली होती है।

55. **उल्लू बनाना**—मूर्ख बनाना।
संसार में बहुत-से लोग ऐसे भी हैं जो दूसरों को उल्लू बनाकर अपनी जीविका चलाया करते हैं।

56. **ऊँट के मुँह में जीरा**—आवश्यकता से बहुत कम वस्तु की उपलब्धता।
राजस्थान में इस भीषण अकाल के दौरान केन्द्र से प्राप्त सहायता राशि ऊँट के मुँह में जीरा सिद्ध हुई है।

57. **एक आँख से देखना**—समभाव से देखना।
माँ-बाप के लिए उचित यही है कि अपनी सभी सन्तानों को एक आँख से देखा करें।

58. **एक ढेले से दो शिकार**—एक कार्य से अनेक उद्देश्यों की पूर्ति।
उस कुख्यात डकैत को मारने से सिपाही रामदीन को पैसा और पदोन्नति दोनों मिले। इस तरह उसने एक ढेले से दो शिकार कर लिए।

59. **एक पंथ दो काज**—एक साधन से दो प्रयोजनों की पूर्ति।
गोरस बेचन हरि मिलन एक पंथ दो काज।

60. **एक लाठी से सबको हाँकना**—सभी के साथ समान व्यवहार करना।
कुछ प्रशासक; भ्रष्ट या ईमानदार, कर्मठ या कामचोर; सभी कर्मचारियों को एक ही लाठी से हाँका करते हैं जो कि अनुचित है।

61. **एक ही थैली के चट्टे-बट्टे**—एक ही प्रवृत्ति के लोग।
इनमें किसको कम कहें? ये सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं।

62. **एड़ी-चोटी का पसीना एक करना**—भारी परिश्रम करना।
इस देश के मजदूरों को दो जून की रोटी जुटाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता है।

63. **ऐंठ दिखाना**—गर्व या अभिमान दिखाना।
वैसे तो वह कुछ भी नहीं है परन्तु रिश्ते में एक मंत्री का दामाद होने के कारण ही ऐंठ दिखाया करता है।

64. **ओखली में सिर देना**—मंजिल तक पहुँचने के लिए कोई भी कष्ट सहने को तैयार रहना।
जब ओखली में सिर दिया हो तो विपत्तियों का सामना भी करो।

65. **ओंठ चबाना**—गुस्से या क्रोध पर अंकुश लगाना।
आजकल के नौजवानों की ओछी हरकतें देखकर, संवेदनशील लोग ओंठ चबाकर रह जाते हैं।

66. **कंधा लगाना**—सहारा देना/मदद करना।
रामू का अहसान मैं कभी नहीं भूलूँगा, क्योंकि बुरे दिनों में मेरी गाड़ी फँसने पर उसी ने कंधा लगाकर पार किया था।

67. **कंठ में होना**—बिल्कुल याद आने को होना।

68. **कच्चा चिट्ठा खोलना**—गोपनीय/आन्तरिक बातें बताना।
डाँटने पर लिपिक ने अधिकारी को दो-टूक जवाब दे दिया, ''साहब, परेशान करोगे तो मैं भी तुम्हारा कच्चा चिट्ठा खोल दूँगा।''

69. **कच्ची गोटी खेलना**—अनुभवहीन होना।
मालिक ने नौकर को डाँटा, ''मैंने भी कच्ची गोटी नहीं खेली है जो तू मेरी आँखों में धूल झोंक रहा है।

70. **क़फन की कौड़ी न होना**—अत्यन्त दरिद्र होना।
जुए और शराब ने उन्हें इस कदर बर्बाद कर दिया है कि अब उनके पास कफ़न की कौड़ी तक नहीं बची है।

71. **कफ़न सिर में बाँधना**—मृत्यु के भय का परित्याग करना।
एवरेस्ट शिखर पर जाने वाले कफन सिर में बाँधकर जाते हैं।

72. **कब्र खोदना**—मरने की तैयारी करना।
नशीली दवाओं का सेवन करने वाले अपनी कब्र स्वयं खोद लेते हैं।

73. **कमर कसना (बाँधना)**—तैयार होना/उद्यत होना।
सीमा पर तैनात प्रहरी हर क्षण अपनी कमर कसे रहते हैं।

74. **कमर टूटना**—शक्तिहीन होना/क्षमता नष्ट होना।
व्यापार में उन्हें एक बार ऐसा घाटा हुआ कि उनकी कमर ही टूट गयी और वे अभी तक नहीं सँभल सके।

75. **करवटें बदलना**—अत्यधिक बेचैन होना/स्वीकार न करना।
बेरोजगारी की अवस्था में कितनी रातें करवटें बदलने में बीत जाती हैं।

76. **कलम तोड़ देना**—बहुत अच्छा लिखना।
तुमने अभिनंदन पत्र क्या लिखा है, बस कलम तोड़कर रख दी है।

77. **कलेजा छलनी करना**—मर्मभेदी बातें कहकर चित्त दुःखाना।
इस देश के बेरोजगारों की व्यथा यह भी है कि घर के लोग व्यंग्य करके उनका कलेजा छलनी कर देते हैं।

78. **कलेजा दो-टूक होना**—बहुत दुःखी होना।
बेटे की मृत्यु की खबर सुनते ही माँ का कलेजा दो-टूक हो गया।

79. **कलेजा निकालकर रखना**—दिल की बात कहना/प्रिय वस्तु को सौंपना।
संकट के क्षणों में पत्नी ने अपना मंगलसूत्र बेचने के लिए पति के हाथों में इस प्रकार रखा मानों अपना कलेजा निकालकर रख रही हो।

80. **कलेजे पर पत्थर रखना**—हृदय को कठोर करना।
पुत्र-वियोग की व्यथा कलेजे पर पत्थर रखकर सहन करनी पड़ती है।

81. **कलेजे (छाती) पर साँप लोटना**—ईर्ष्या/डाह होना।
मेरी प्रगति देखकर पड़ोसी के कलेजे पर साँप लोट जाया करता है।

82. **काँटा निकालना**—संकट दूर करना।
उस कुख्यात डकैत का सफाया कर पुलिस ने बहुतों की राह का काँटा निकाल दिया है।

323. **हाथ पर हाथ रखकर बैठना**—बेकार बैठना।
बापू ने उससे कहा, ''और नहीं तो घर के ही थोड़े-बहुत काम कर लिया करो, हाथ पर हाथ रखकर बैठने से काम कैसे चलेगा?''

324. **हाथ पीले करना**—ब्याह करना।
भारत देश में बेटी के हाथ पीले करना दुष्कर कर्मों में से एक कर्म है।

325. **हाथ मलना**—पछताना।
अवसर चूक जाने पर हाथ मलना बुद्धिमानी का कार्य नहीं है।

326. **हुक्म का गुलाम**—आदेश की अनुपालना करने वाला।
रमेश नये अधिकारी से बोला, ''साहब मैं तो हुक्म का गुलाम हूँ। आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूँगा।''

कुछ अन्य विशिष्ट मुहावरे

[अर्थ/आशय के अनुसार स्वयं वाक्य में प्रयोग करने की चेष्टा करें।]

1. **अंग-अंग मुस्कुराना**—बहुत खुश (प्रसन्न) होना।
2. **अँगुलियों पर गिना जाना**—संख्या में बहुत कम होना।
3. **अँगुलियों पर नाचना**—वशीभूत होना।
4. **आंचल पसारना**—(दया की) भिक्षा माँगना।
5. **अंटी पर चढ़ना**—अधिकार में आना/वश में आना।
6. **अंधेर मचाना**—अन्याय करना।
7. **अकड़ दिखाना**—अभिमान/गर्व का प्रदर्शन करना।
8. **अक्ल चकराना/चरने जाना**—बुद्धि का काम न करना/समझ में न आना/किंकर्तव्यविमूढ़ होना।
9. **अड्डा जमाना**—अधिकार करना।
10. **अपना ही राग अलापना**—अपने स्वार्थ की बात करना।
11. **अपनी गली में कुत्ता भी शेर होता है**—अपने स्थान पर कमजोर भी बलवान होते हैं।
12. **अपनी पगड़ी अपने हाथ**—अपनी इज्जत अपने हाथ में होती है।
13. **अपनी ही पड़ी रहना**—सर्वदा अपने ही लाभ का ध्यान रखना।
14. **अपने पैरों पर खड़ा होना**—स्वावलम्बी बनना।
15. **अपने हाथों पापड़ बेलना**—जानबूझकर कष्ट उठाना।
16. **अमचूर बना देना**—हड्डी-पसली तोड़ देना।
17. **अरमान निकालना**—मनोकामना पूरी करना।
18. **अवसर चूकना**—मौका हाथ से निकल जाना।
19. **आँख उठाकर भी न देखना**—थोड़ा भी महत्त्व न देना।
20. **आँख ऊँची होना**—प्रतिष्ठित होना।
21. **आँख-कान खोलकर चलना**—अत्यन्त सावधान होना/रहना।
22. **आँख ठहरना**—रुचिकर/मनोरम होना, पसन्द आना।

आँख बदलना—बेमुरौव्वत होना।
23. आँख मुँदना—मृत्यु को प्राप्त होना।
24. आँख मूँदना—विचारपूर्वक काम न करना।
25. आँख लगना—आसक्त होना/नींद आना।
26. आँख से ओझल न करना—सर्वदा अपने पास रखना।
27. आँखें फाड़कर देखना—ध्यानपूर्वक/आश्चर्य के साथ देखना।
28. आँखों के सामने अँधेरा छा जाना—कुछ भी दिखायी न पड़ना।
29. आँखों में (का) काँटा होना—असह्य होना।
30. आँखों में समा जाना—अत्यन्त प्रिय बन जाना।
31. आँसू पीना—अपने दुःख को दबाये रखना।
32. आँसू पोंछना—सांत्वना प्रदान करना/संकट में मदद करना।
33. आँसू बहाना—विलाप करना।
34. आकाश में छेद करना—चालाकी दिखाना।
35. आग-फूँस का बैर होना—जन्मजात शत्रुता होना।
36. आग में कूदना—संकट में पड़ना।
37. आगा-पीछा न सोचना—लाभ-हानि की चिन्ता न करना।
38. आगे-आगे हो लेना—सदैव नेतृत्व का (आगे रहने का) प्रयास करना।
39. आत्मा ठण्डी करना—शान्ति प्रदान करना।
40. आप भला तो जग भला—भला आदमी सभी को भला समझता है।
41. आपे में आना—होश में आना।
42. आपे से बाहर होना—क्रोध/गर्व की बातें करना।
43. आबरू खाक में मिलना—मर्यादा खो बैठना/बेइज्जत होना।
44. आरती करना—इज्जत करना/सम्मान देना।
45. आल्हा गाना—जगह-जगह सूचनाएँ पहुँचाना।
46. आवाजें कसना—मर्मभेधी बात कहना।
47. आस्तीन चढ़ाना—लड़ने के लिए तैयार होना।
48. आह पड़ना—किसी को सताने का फल मिलना।
49. इतिश्री करना—कार्य समाप्त करना।
50. इधर का न उधर का—निरर्थक/व्यर्थ/बेकार।
51. ईश्वर का प्यारा हो जाना—(कम उम्र में) मर जाना।
52. उछल पड़ना—अति प्रसन्न होना।
53. उठा न रखना—अपनी तरफ से पूरा-पूरा प्रयास करना।
54. उथल-पुथल होना—व्यापक परिवर्तन होना/अस्त-व्यस्त होना।
55. उबल पड़ना—क्रुद्ध होना।
56. उलझन में डालना—व्यग्र/चिन्तित करना/झंझट में फँसाना।
57.

162. **छाती खोलकर चलना**—निर्भय होकर चलना।
163. **छाती जलाना**—दु:ख देना।
164. **छाती ठण्डी होना**—चित्त संतुष्ट होना/चित्त का उद्वेग शान्त होना।
165. **छाती पर बाल होना**—पौरुष या उदारता के गुण से सम्पन्न होना।
166. **छाती थामकर रह जाना**—शोक या विपत्ति के कारण स्तब्ध रह जाना।
167. **छान मारना**—खोजबीन करना।
168. **छिपा रुस्तम निकलना**—अनुमान के विपरीत दुर्जन/सज्जन निकलना।
169. **जबान एक होना**—अपनी कही हुई बात पर दृढ़ रहना।
170. **जबान देना**—वादा करना/वचन देना।
171. **जबान पर चढ़ा रहना**—अच्छी तरह से याद रहना।
172. **जबानी जमा-खर्च करना**—दिखावटी सहानुभूति दिखाना।
173. **जमीन में गड़ जाना**—अत्यधिक लज्जित होना।
174. **जली-भुनी कहना**—कठोर शब्दों का प्रयोग करना।
175. **जान पर बनना**—मृत्यु का संकट उपस्थित होना।
176. **जानबूझकर मक्खी निगलना**—अपना अनिष्ट स्वयं करना।
177. **जान भारी होना**—जिन्दगी कष्टमय होना।
178. **जान से हाथ धोना**—मर जाना।
179. **जाल फैलाना**—षड्यन्त्र करना/रचना।
180. **जाल में फँसना**—धोखे में आ जाना।
181. **जी का बोझ हल्का होना**—चिन्ता से मुक्ति मिलना।
182. **जी टँगा रहना**—आशंकित रहना।
183. **जी दहल जाना**—व्यग्र/भयभीत हो जाना।
184. **जुए को कंधे से उतारना**—स्वतन्त्र होना।
185. **जूता लगाना**—बेइज्जत करना।
186. **जैसा दाम वैसा काम**—जितना पैसा खर्च करोगे, उतनी उपलब्धि मिलेगी।
187. **झंडा गाड़ना**—अधिकार/आधिपत्य स्थापित करना।
188. **झाड़ू पड़ना**—अपमानित होना/तिरस्कृत होना।
189. **झाड़ू फेरना**—नष्ट करना।
190. **टकटकी बँधना**—पलक न झँपना।
191. **टका-सा मुँह लेकर रह जाना**—शर्मिंदा होना।
192. **टके का सब खेल है**—धन से कोई भी काम हो सकता है।
193. **टाँग तोड़ना**—बेकार घूमना/कड़ा दण्ड देना।
194. **टाँग पसारकर सोना**—निश्चिन्त होकर सोना।
195. **टालमटोल करना**—बहानेबाजी करना।
196. **टुकड़ा तोड़ना**—किसी का आश्रित होकर रहना।

232. **दीपक में बत्ती पड़ना**—संध्या होना।
233. **दुकान बढ़ाना**—दुकान बन्द करना।
234. **दुहाई देना**—न्याय की प्रार्थना करना।
235. **दूध की नदी बहाना**—सुख-शान्ति की व्यवस्था करना/धन वैभव दिखाना।
236. **दूध के दाँत न टूटना**—अनुभवहीन होना/बाल्यावस्था।
237. **दूसरा रंग न चढ़ना**—स्थिर (प्रभावहीन) रहना।
238. **दृष्टि से गिरना**—सम्मान कम होना/सम्मान समाप्त होना।
239. **दो कौड़ी का हो जाना**—महत्त्वहीन हो जाना।
240. **द्वार झाँकना**—सहायता की उम्मीद करना/याचना करना।
241. **धक्का लगना**—नुकसान होना।
242. **धमा-चौकड़ी करना**—एकत्रित होकर शोरगुल मचाना।
243. **धरा रह जाना**—व्यर्थ होना/उपयोग न हो पाना।
244. **धुन सवार होना**—किसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए सन्नद्ध होना।
245. **धूल फाँकना**—बेकार घूमना।
246. **धूल में मिल जाना**—नष्ट हो जाना।
247. **ध्यान से उतरना**—भूल जाना।
248. **नख-शिख वर्णन करना**—सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन करना।
249. **नथुने फुलाना**—क्रोध दिखलाना।
250. **नमक खाना**—नौकरी करना/एहसास करना।
251. **नया गुल खिलना**—कोई विलक्षण घटना घटित होना।
252. **नसीब होना**—भाग्य का अनुकूल होना।
253. **नाम कर जाना**—प्रसिद्ध हो जाना।
254. **नाम बिकना**—विख्यात/कुख्यात होना।
255. **निगाह में चढ़ना**—बुरा बन जाना।
256. **नींव डालना**—आरम्भ करना।
257. **नोंक-झोंक करना**—छेड़छाड़ करना।
258. **पगड़ी की लाज रखना**—मान-मर्यादा बनाये रखना।
259. **पट्टी में आना**—बहकावे में आना।
260. **पत्थर का कलेजा करना**—कठोर/निष्ठुर/दृढ़ बनना।
261. **पत्थर पर दूब जमना**—अद्‌भुत या असम्भव कार्य होना।
262. **पत्थर पसीजना**—कठोर हृदय वाले व्यक्ति द्वारा करुणा दर्शाना।
263. **पर न मार सकना**—पहुँच सम्भव न होना।
264. **परदा डालना**—किसी बात को छिपाना।
265. **पर्दाफाश होना**—भेद खुलना।
266. **परलोक दिखाना**—हत्या करना।

3. **अंधा पीसे, कुत्ते खायें**—मूर्खों के परिश्रम का लाभ मुफ्तखोर लोग उठाते हैं।
वह मक्खीचूस सेठ दिन-रात परिश्रम करके पैसा कमाता है और उसके साले, भांजे तथा अन्य रिश्तेदार उसकी कमाई पर ऐश कर रहे हैं। इसी को कहते हैं—अंधा पीसे, कुत्ते खायें।

4. **अंधे के आगे रौवै, अपना दीदा खोवै**—मूर्ख व्यक्ति को समझाना/उपदेश देना व्यर्थ है।
रामू को पिताजी बार-बार समझाते रहते हैं किन्तु वह आये दिन किसी-न-किसी से लड़ बैठता है। इस पर एक दिन उसकी माँ खीझकर बोली, "अब रहने भी दीजिये। यह लड़का तो 'अंधे के आगे रौवे, अपना दीदा खौवे' की कहावत चरितार्थ कर रहा है।"

5. **अंधे के हाथ बटेर लगना**—संयोग से अनाड़ी या अयोग्य व्यक्ति को सफलता मिलना।
वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्थाएँ इतनी लचर हो गयी हैं कि अंधे के हाथ बटेर सहज ही लग जाया करते हैं।

6. **अंधों में काना राजा**—मूर्खों के मध्य अल्पज्ञ भी सम्मानित होता है।
रामू केवल 8वीं कक्षा तक पढ़ा है। परन्तु उसके गाँव में सभी निरक्षर हैं। इस कारण सभी उसकी इज्जत करते हैं। इसी को कहते हैं, 'अंधों में काना राजा होता है।'

7. **अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता**—बड़ा कार्य सहयोग से ही सम्भव होता है।
रामू ने बहिन की शादी के लिए छोटे भाइयों से मदद का आग्रह करते हुए बोला, "अकेले मैं कुछ भी नहीं कर सकूँगा। क्योंकि अकेला चना कभी भाड़ फोड़ सकता है क्या?"

8. **अच्छे घर बायन देना**—किसी शक्तिशाली व्यक्ति से दुश्मनी करना।
रामू जिस किसी से भी लड़ जाता है। इस बार श्यामू पहलवान से भिड़ गया जिसकी आधी उम्र जेल में कटी है। इस पर लोग कहने लगे हैं कि अब इसकी आदत ही सुधर जायेगी क्योंकि इस बार इसने अच्छे घर बायन दिया है।

9. **अधजल गगरी छलकत जाय**—ओछा आदमी थोड़ी-सी उपलब्धि पर इतराने लगता है।
कल तक श्यामलाल चाट का ठेला लगाता था और सभी से हाथ जोड़कर बात करता था लेकिन 1 लाख रुपये की लाटरी मिलते ही वह शहर के अन्य सेठों की तरह अकड़कर चलने लगा है। इसी को कहते हैं—अधजल गगरी छलकत जाय।

10. **अपना काज महाकाज**—अपना स्वार्थ सर्वोपरि होना।
रामलाल यों तो किसी के यहाँ कभी झाँकता तक नहीं, परन्तु जब उसका अपना कोई काम आ जाता है तो 24 घंटे की गुलामी-सी करने लगता है, क्योंकि उसके लिए अपना काज महाकाज होता है।

11. **अपनी अटक पड़ने पर गधे को भी बाप बनाना पड़ता है**—विवश होने पर तुच्छ व्यक्ति की भी खुशामद करनी पड़ती है।

12

संक्षेपण

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। विचारों का आदान-प्रदान करके वह इस सामाजिकता का संरक्षण एवं संवर्द्धन करता है। किसी भाव, विचार, घटना या संदर्भ विशेष को लिखित या मौखिक रूप में प्रस्तुत करने की दो सामान्य विधियाँ हैं—(i) घटना को संकेत रूप में अर्थात् संक्षिप्त-स्वरूप में प्रस्तुत करना तथा (ii) घटना को विस्तारित अर्थात् व्यापक रूप में प्रस्तुत करना। आम जीवन में ये दोनों ही शैलियाँ (विधियाँ) प्रचलन में हैं। यही कारण है कि लेखन के क्षेत्र में भी इनका स्वाभाविक प्रचलन मिलता है। ये दोनों ही प्रवृत्तियाँ आम जीवन की अनिवार्य आवश्यकता हैं।

सभ्यता और बौद्धिकता के विकास ने मनुष्य की जिन्दगी को व्यस्त बनाकर उसके लिए समय का अभाव पैदा कर दिया है। यही कारण है कि आज लोग व्यापक सन्दर्भों की उपेक्षा करने लगे हैं। आज विविध संगठनों या संस्थानों में ही नहीं आम जीवन में भी संक्षेपण का महत्त्व निरन्तर बढ़ता चला जा रहा है।

अर्थ (आशय)—'संक्षेपण' शब्द अंग्रेजी शब्द 'प्रेसी' (Precis) का हिन्दी रूपान्तरण माना जाता है। यह मूलतः फ्रेंच भाषा का शब्द है। इसके अनुसार संक्षेपण वस्तुतः किसी विस्तृत विवरण, व्याख्या, वक्तव्य तथा भाषण आदि के तथ्यों और निर्देशों का एक ऐसा सार है जिसमें अनावश्यक, अप्रासंगिक, अनर्गल, पुनरावृत्त तथा असम्बद्ध बातों को छोड़ दिया जाता है और समस्त आवश्यक एवं उपयोगी तथ्यों को संक्षिप्त रूप में संकलित किया जाता है। यह स्वयं में पूर्ण होता है और किसी प्रकार की अपूर्णता (अभाव) का अनुभव नहीं होने देता।

संक्षेपण के लिए संक्षिप्तीकरण, संक्षेपीकरण, संक्षिप्त प्रभृति अनेक शब्द प्रचलित हैं, किन्तु संक्षेपण शब्द अपनी व्यावहारिक, भावव्यंजक एवं सार्थक क्षमता के कारण सर्वस्वीकृत-सा बन गया है। इसके समानार्थक शब्द के रूप में सारांश (Summary), भावार्थ (Substance), अन्वय (Paraphrasing), मुख्यार्थ (Gist), आशय (Purpose), रूपरेखा (Synopsis) प्रभृति शब्द भी प्रचलित हैं। इन सभी का आशय लगभग एक-सा है—किसी बात को अत्यल्प शब्दों में व्यक्त करना। परन्तु फिर भी इनका अपना-अपना स्वतन्त्र कार्य-क्षेत्र है और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है।

विशेषताएँ—व्यस्त होते जा रहे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संक्षिप्तता की स्थिति अपरिहार्य होती चली जा रही है। अच्छे संक्षेपण की सामर्थ्य लेखक की कार्य-कुशलता में वृद्धि करती है। इसकी बहुमान्य विशिष्टताएँ अग्र प्रकार हैं—

संक्षेपण के कुछ उदाहरण

(1)

साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना या मनोरंजन करना मात्र नहीं है। यह कार्य तो भाट और मदारी तथा विदूषक और मसखरे किया करते हैं। साहित्यकार का कर्तव्य इनसे कहीं बहुत ऊँचा होता है। वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है, हमारी मानवीय दृष्टि का प्रसार करता है। साहित्यकार का कम-से-कम यही उद्देश्य होना चाहिए। इस मनोरथ को सिद्ध करने के लिए जरूरत है कि उसके चरित्र '**पॉजीटिव**' हों, जो प्रलोभनों के आगे सिर न झुकायें बल्कि उनको परास्त करें, जो वासनाओं के पंजे में न फँसे बल्कि उनका दमन करें, जो किसी विजयी सेनापति की भाँति शत्रुओं का संहार करके विजय-नाद करते हुए निकलें।

प्रश्न—(i) उपर्युक्त गद्यांश का उचित शीर्षक लिखिए।

(ii) उपर्युक्त गद्यांश का संक्षिप्तीकरण कीजिए।

(iii) साहित्यकार हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, कैसे? उक्त गद्यांश के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

(iv) '**पॉजीटिव**' चरित्र का आशय क्या है?

उत्तर—(i) उपर्युक्त गद्यांश का उचित शीर्षक है—'**साहित्यकार की रचनाधर्मिता**'।

(ii) भाटों, मदारियों, विदूषकों या मसखरों की भाँति साहित्यकार का काम मन बहलाना या मनोरंजन मात्र नहीं। वह हम में मनुष्यत्व जगाकर, सद्भावों का संचरण कर, मानवीय दृष्टि का प्रसार कर हमारा मार्ग-दर्शन करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु जरूरी है कि वह पॉजीटिव चरित्र ले जो प्रलोभनों, वासनाओं तथा शत्रुओं का दमन एवं संहार करे।

(iii) साहित्यकार हमारे उन मानवीय गुणों को जाग्रत और उद्वेलित करता है जिसके सहारे हम परस्पर समरसता एवं समन्वय स्थापित कर विकास-पथ पर आगे बढ़ते हैं। इतना ही नहीं वह ऐसे मानवीय सन्दर्भों के दमन एवं विसंगतियों के संहार की प्रेरणा भी देता है जो मानवता के विकास-पथ पर बाधा उपस्थित करते हैं। इसलिए साहित्यकार को हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शक भी कहा जा सकता है।

(iv) '**पॉजीटिव**' चरित्र का आशय रचनाकार द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले ऐसे चरित्र हैं, जो अपने मनोरथ की पूर्ति में बाधक बनने वाली किसी भी विसंगति या संकट को देख हतोत्साहित नहीं होते। बल्कि वे उनका दमन कर सहज भाव से आगे बढ़ जाते हैं। समाज ऐसे चरित्रों के व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित हो तदनुरूप आचरण करता है और हताशा के क्षणों को त्यागकर सफलता अर्जित करता है। इसीलिए इन प्रेरक चरित्रों को जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखने के कारण 'पॉजीटिव' चरित्र भी कहा जाता है।

दूरगामी परिणाम उससे कहीं अधिक ... ईश्वर से शान्ति की प्रार्थना करने लगा है।

(3)

आजकल '**प्रेम-विवाह**' होने लगे हैं; किन्तु उनका कोई उद्देश्य नहीं होता है। वस्तुतः प्रेम-विवाह एक आवेश मात्र हैं जिसके परिणाम कुछ दिनों में बड़े ही भयावह निकलते हैं। असफल ग्रहण और तलाक के अधिकांश मामले प्रेम-विवाहों में ही होते देखे गये हैं। वास्तव में ऐसे विवाह प्रेम से नहीं, आकर्षण से होते हैं; भले ही वह आकर्षण रूप का हो या धन का हो। इसलिए इन विवाहों को यदि 'प्रेम-विवाह' न कहकर 'आकर्षण-विवाह' कह दिया जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। प्रेम जहाँ स्थायी होता है वहीं आकर्षण नहीं। इसलिए इन विवाहों का प्रचलन हमारे लिए अहितकर ही सिद्ध हुआ है। वस्तुतः विवाह एक पवित्र बन्धन है—चाहे आप उसे सामाजिक मानें या धार्मिक। क्षणिक झटके से यह नहीं तोड़ा जा सकता। शास्त्रकारों ने विवाह का उद्देश्य परस्पर प्रीतियुक्त रहकर राष्ट्र को सुसन्तति प्रदान करना माना है। इसलिए हमारे यहाँ पाणिग्रहण-संस्कार को स्वीकार किया गया है। प्रेम-विवाह चंचलता और उच्छृंखलता पर अधिक आधारित होते हैं, जो आजीविका या विचार-वैषम्य की गम्भीर परिस्थिति आते ही मनुष्य को इस तरह बर्बाद कर देते हैं कि उसकी सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। ऐसे विवाहों से जीवन-वृद्धि नहीं मिलती।

प्रश्न—(i) उपर्युक्त गद्यांश का उचित शीर्षक लिखिए।

(ii) उपर्युक्त गद्यांश का संक्षिप्तीकरण कीजिए।

(iii) 'सामान्य-विवाह' एवं 'प्रेम-विवाह' का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

(iv) 'प्रेम-विवाह' की असफलता के कारण बताइए।

उत्तर—(i) उपर्युक्त गद्यांश का उचित शीर्षक है—'**प्रेम-विवाह की विसंगतियाँ**'।

(ii) आजकल आवेशवश उद्देश्यविहीन प्रेम-विवाह सम्पन्न हो रहे हैं, असफल होते हैं। इनके मूल में धन या रूप का प्रबल आकर्षण होता है, अतः इन्हें **आकर्षण-विवाह** कहना चाहिए। प्रेम स्थायी होता है, आकर्षण अस्थायी। इसीलिए ये असफल होते हैं। विवाह तो पवित्र सामाजिक या धार्मिक बन्धन होता है, जो सहज ही नहीं टूटता। विद्वानों ने इसे पाणिग्रहण-संस्कार कह सुयोग्य संतति की प्राप्ति इसका लक्ष्य बताया है। ये स्थिर होते हैं, जबकि उच्छृंखला पर आश्रित प्रेम-विवाह संकट आते ही बिखर कर जीवन को नारकीय बना देते हैं।

(iii) सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं पर आधारित 'सामान्य-विवाह' एक पवित्र बन्धन होता है, जिसका उद्देश्य भी पवित्र होता है। इसके विपरीत '**प्रेम-विवाह**', रूप या धन के आकर्षण से सम्पन्न होने वाली एक चंचलता या उच्छृंखलता भरी गतिविधि होता है जो आवेश के क्षणों में सम्पन्न तो हो जाता है किन्तु विसंगतियों से सम्मुखीन होते ही बिखर भी जाता है।

(iv) **प्रेम-विवाह** के सम्पन्न होने के पीछे कोई सुनिश्चित उद्देश्य या दृष्टिकोण नहीं होता है। यह रूप या धन के आकर्षण अथवा चंचलता या उच्छृंखलता के कारण मन के आवेग के साथ सम्पन्न होता है और किसी भी कारण से उनके शिथिल होते ही बिखर भी जाता है। यथार्थ प्रेम का अभाव भी इसकी असफलता का एक प्रमुख कारण है।

(4)

प्रेमचन्द जी के हृदय में मानवता के प्रति आरम्भ से ही प्रेम उत्पन्न हो गया था। इसीलिए उन्होंने अपने साहित्य में उन लोगों को स्थान दिया जो सामाजिक विषमता और शोषण के शिकार थे, जो पददलित और पीड़ित थे। उनकी मूक आवाज को प्रेमचन्दजी ने वाणी दी तथा जमींदारों, सेठों, सामन्तों और धर्म के ठेकेदारों की असलियत को, उनके जीवन के काले कारनामों को प्रकट कर सबके सामने रखा। प्रेमचन्द जी की दृष्टि में पीड़ित और शोषित मानवता की सेवा, धर्म की सच्ची साधना थी। वे मनुष्य और उसकी मनुष्यता को सर्वोपरि स्थान देते थे। उन्होंने आरम्भ से अन्त तक एक ही वाद को माना है और वह है मानववाद। चाहे वे यथार्थवाद की ओर झुके हों, चाहे आदर्शवाद की ओर; चाहे वे गाँधीवाद के समर्थक रहे, चाहे साम्यवाद या समाजवाद के; पर उन्होंने मानवतावाद को कभी नहीं छोड़ा। इस प्रकार प्रेमचन्द जी एक मानवतावादी कलाकार हैं। गिरी हुई मानवता को ऊंचा उठाना, मनुष्य में मनुष्यता की प्रतिष्ठा करना, ऐसी संस्कृति का निर्माण करना जिसमें कोई सामाजिक भेद-भाव और विषमता न हो तथा जिसमें व्यक्ति की अपेक्षा समग्र समाज की महत्ता हो—यही प्रेमचन्द जी की साहित्य-साधना का उद्देश्य था।

प्रश्न—(i) उपर्युक्त गद्यांश का उचित शीर्षक लिखिए।

(ii) उपर्युक्त गद्यांश का संक्षिप्तीकरण कीजिए।

(iii) प्रेमचन्द जी की दृष्टि में धर्म की सच्ची साधना क्या थी?

(iv) प्रेमचन्द जी की साहित्य-साधना का उद्देश्य क्या था?

उत्तर—(i) उपर्युक्त गद्यांश का उचित शीर्षक है—**'प्रेमचन्द जी की साहित्य-साधना।'**

(ii) आरम्भ से ही मानवतावादी होने के कारण प्रेमचन्द जी ने दलित और पीड़ित वर्ग की व्यथा को अपने साहित्य में स्थान देते हुए जमींदारों, सेठों, सामन्तों और धर्म के ठेकेदारों के यथार्थ एवं कुकर्मों को प्रस्तुत किया। वे सच्चे मानवतावादी थे। यथार्थवादी तथा आदर्शवादी एवं गाँधीवादी तथा साम्यवादी या समाजवादी हो करके भी वे मानवतावादी बने रहे, क्योंकि शोषित मानवता की सेवा उनकी दृष्टि में सच्ची साधना थी। वे शोषणविहीन समाज की स्थापना के पक्षधर थे—यही उनके साहित्य का उद्देश्य भी था।

(iii) अपने दायित्व (कर्त्तव्य) का बोध एवं तदनुसार आचरण ही सच्चा धर्म माना गया है। प्रेमचन्द मानवतावादी रचनाकार थे। इसीलिए उनकी दृष्टि में पीड़ित और शोषित मानवता की सेवा ही धर्म की सच्ची साधना थी। उनकी रचनाओं से भी यही यथार्थ चरितार्थ हुआ है।

(iv) मानवता की प्रतिष्ठा, शोषण, भेद-भाव और विषमता से मुक्त समाज एवं व्यक्ति की अपेक्षा समाज की प्रतिष्ठा प्रेमचन्द जी की साहित्य-साधना का मूल उद्देश्य था।

(5)

उदयपुर राजस्थान का प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। इसे महाराणा उदयसिंह ने बसाया था। इस नगर के साथ राजस्थान का इतिहास जुड़ा हुआ है। साथ ही इसका प्राकृतिक सौन्दर्य भी इतना बढ़ा-चढ़ा है कि इसके दृश्यों को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं। पहाड़ियों तथा

13

पल्लवन

विचारों की अभिव्यक्ति या आदान-प्रदान के अनेक माध्यम हैं, परन्तु इसमें सन्देह नहीं भाषा सबसे सशक्त माध्यम है। इसके अन्तर्गत कभी विस्तार के साथ कही गयी बात को ंश रूप में ग्रहण करने की आवश्यकता पड़ती है तो कभी सार रूप में कही गयी बात को स्तारित रूप में ही (आम जन द्वारा) समझा जा सकता है। साहित्य (या अन्यत्र भी) इन्हीं क्षाओं की पूर्ति करने वाली प्रक्रियाओं को **संक्षिप्तीकरण** तथा **पल्लवन** के नाम से जाना ता है। यथावसर और यथास्थान दोनों ही विधाएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं। साहित्य के किसी भी ध्येता के लिए इन दोनों ही विधाओं में पारंगत होना आवश्यक है।

पल्लवन का आशय—साहित्य के अन्तर्गत रचनाकारों द्वारा अपने पाठकों को प्रभावित (मोहित) करने के निमित्त **'गागर में सागर'** भरने की स्वाभाविक प्रवृत्ति मिलती है। इसी रण गूढ़ोक्तियों का सृजन होता है। सामान्य बुद्धि के पाठकों के लिए इन्हें बोधगम्य बनाने हेतु में समाहित (प्रस्तुत) मूल विचारों या भावों को एक व्यवस्थित क्रम में (तारतम्य के साथ) मझाते हुए प्रस्तुत करना ही विस्तारण या पल्लवन कहलाता है। दूसरे शब्दों में किसी सूक्ति, कोक्ति, नीतिगत कथन, विचार या भावपूर्ण उक्ति को सुबोध बनाकर विकसित और परिवर्द्धित प में प्रस्तुत करना ही पल्लवन है।

पल्लवन हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव—वैसे तो पल्लवन मूलतः पल्लवनकर्ता के ज्ञान और प्रतिभा के साथ व्यावहारिक अनुभव पर ही निर्भर करता है कि वह कितने प्रभावशाली ढंग से मूल उक्ति का विस्तार कर सकता है; क्योंकि इसके लिए किन्हीं सुनिश्चित नियमों का निर्धारण नहीं किया गया है। फिर भी इस हेतु कुछ सुझाव अवश्य दिये जा सकते हैं, जिनकी अनुपालना से पल्लवन-सुकर और प्रभावी बन सकता है। एतदर्थ निम्न प्रक्रिया को अपनाना संगत होगा।

(1) वाचन—मूल सूक्ति या उक्ति को सर्वप्रथम गम्भीरता के साथ पढ़कर उसके आशय को समझने का यत्न करना चाहिए। एक-दो बार ऐसा करने से मूल लेखक का मन्तव्य सहज ही समझ में आ जाता है।

(2) अर्थ—लेखक का मन्तव्य समझ में आ जाने के उपरान्त उसके अर्थ का निर्धारण इस प्रकार करना चाहिए कि एक सामान्य बुद्धि का पाठक भी उसे आसानी से समझ सके। इस प्रयास के अन्तर्गत मन में उठने वाले समस्त भावों या विचारों के मध्य केन्द्रीय भाव या विचार का सुनिश्चय करना चाहिए।

ता बन जाता है। ... अतः पल्लवन उनके लिए एक सहज लेखनकर्म-

कुछ महत्त्वपूर्ण पल्लवन

(1) अपयश का भय सबसे बड़ा भय है।

मनुष्य स्वभावतः सामाजिक प्राणी है। समाज के साथ जुड़कर चलना जहाँ उसकी विवशता कही जा सकती है, वहीं उसकी विशिष्टता भी। मानव-मूल्य, नैतिकता, मानवता आदि सन्दर्भ वे सामाजिक मान्यताएँ हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन किया करती हैं। इनके अनुसार आचरण करने से व्यक्ति को समाज में व्यापक प्रतिष्ठा और सम्मान मिलता है। इससे उसका आत्मविश्वास और आत्मबल तो बढ़ता ही है, एक विशेष प्रकार की आत्म सन्तुष्टि

एवं आत्मिक शान्ति भी मिलती है। इसके विपरीत अनुचित आचरण करने पर व्यक्ति को जो अपयश मिलता है, उसके कारण समाज उसका तिरस्कार करने लगता है। फलतः ऐसा व्यक्ति समाज से पूरी तरह कटकर रह जाता है। लेकिन ऐसी एकाकी जिन्दगी मनुष्य के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं होती। यही कारण है कि कोई भी बुद्धिमान एवं स्वाभिमानी व्यक्ति सदैव ऐसी परिस्थिति से बचने का यत्न करता है ताकि उसे किसी प्रकार के अपयश का भागीदार न बनना पड़े। इसी व्यावहारिक यथार्थ की ओर संकेत करते हुए सुप्रसिद्ध इतिहास पुरुष चाणक्य ने कहा है—**अपयश का भय सबसे बड़ा भय है।**

(2) आपति काल परखिये चारी। धीरज धरम मित्र अरु नारी॥

मानव-जीवन संघर्ष का दूसरा नाम है। यह संघर्ष आन्तरिक भी हो सकता है और बाहरी भी। वस्तुतः व्यक्ति के अन्र्तमन में पैदा होने वाली इच्छाएँ न केवल उसे कर्मठ बनाती हैं बल्कि बड़े-से-बड़े संकट से टकरा जाने की प्रेरणा भी प्रदान करती हैं। इसी कारण मनुष्य प्रायः असम्भव से प्रतीत होने वाले सन्दर्भों (कार्यों) को भी सम्भव कर दिखाता है। परन्तु ऐसा सहज ही नहीं हो जाया करता। इसके लिए व्यक्ति को कभी-कभी बहुत बड़ी कुर्बानी देनी पड़ जाती है। ऐसे अवसर पर न केवल व्यक्ति के धैर्य एवं सामर्थ्य की परीक्षा होती है बल्कि उसके आत्मीय जनों की पहचान भी हो जाया करती है। विकट संघर्ष या संकट के विषम क्षणों में जहाँ धैर्य, संयम एवं आत्मविश्वास व्यक्ति के आत्मबल एवं संघर्षशीलता को जीवन्त बनाये रखते हैं, वहीं उसकी बौद्धिक क्षमता उसे उसके कृतित्व (धर्म) का बोध भी कराती रहती है। थोड़ी-सी अधीरता एवं थोड़ी-सी चूक उसके लिए भारी पड़ सकती है। ऐसे में निराशा या हताशा का भाव पैदा होकर व्यक्ति को निष्क्रिय बना डालते हैं। यहीं व्यक्ति को उत्साहवर्द्धक आत्मीयता या सहानुभूति की आवश्यकता महसूस होती है जो उसे अपने परिजनों एवं मित्रों से मिल सकती है। वस्तुतः इनमें जो आत्मीय होते हैं वे साथ निभाते हैं, परन्तु जो स्वार्थी होते हैं वे किनारा कर लेते हैं। तात्पर्य यह कि जब संकट के दिन आते हैं तब व्यक्ति को अपने धैर्य, कर्त्तव्य (धर्म), सच्चे मित्र और सच्ची नारी (सहयोगिनी अर्थात् पत्नी) की पहचान हो सकती है। इसी यथार्थ को गोस्वामी जी ने कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है—**आपति काल परखिये चारी। धीरज धरम मित्र अरु नारी॥**

(6) जाके पाँव न फटी बिवाई। सो क्या जाने पीर पराई॥

बिवाई एक रोग है जिसमें (पैरों की) एड़ियाँ फट जाती हैं। ऐसा होने पर असहनीय पीड़ा होती है। ऐसे में मनुष्य प्राय: अपनी नियमित और आवश्यक गतिविधियाँ करने में भी असमर्थ हो जाता है। दुर्भाग्यवश ऐसी (इस रोग की) वेदना अधिकांशत: श्रमजीवी किसानों और मजदूरों को ही सहन करनी पड़ती है। नंगे पाँव काम करना इनकी मजबूरी होती है। धूल, मिट्टी या अन्य गन्दगी के पड़ने से बिवाई के घावों की पीड़ा और भी बढ़ जाती है। परन्तु फिर भी ये अभागे कार्य करते ही रहते हैं, क्योंकि यदि ये कार्य नहीं करेंगे तो इनके घर चूल्हा भी नहीं जलेगा। ऐसे लोगों की इस विवशता भरी पीड़ा या व्यथा का अनुमान मात्र उनकी अवस्था के अवलोकन या कल्पना से नहीं लगाया जा सकता। इसे यथार्थ में वही समझ सकता है जो इसे या इस प्रकार की व्यथा को भोग चुका हो। तात्पर्य यह कि किसी विशेष व्यथा या पीड़ा की यथार्थ अनुभूति वही कर सकता है जो पूर्व में उसे भोग चुका हो। ऐसे लोगों में संवेदनशीलता का स्वत: विकास होता है जो समाज में पारस्परिक सौहार्द्र की भावना पैदा करती है। परन्तु यदि किसी ने ऐसी व्यथा की कभी अनुभूति ही न की हो तो वे ऐसे लोगों की व्यथा को भला कैसे समझ सकेंगे या समझना ही क्यों चाहेंगे। मानवीय आचरण की इसी विसंगति को कुछ इस प्रकार भी समझा जा सकता है—**जाके पाँव न फटी बिवाई। सो क्या जाने पीर पराई॥**

(7) जो शस्त्र उठाता है उसका अन्त भी शस्त्र के द्वारा ही होता है।

स्वभाव (प्रकृति) की मजबूरी इन्सान की सबसे बड़ी मजबूरी होती है। वह जिन सन्दर्भों को अपने आचरण में ढाल लेता है, उन्हें सहज ही नहीं छोड़ पाता है; भले ही वे अच्छे हों या बुरे, मानवीय हों या अमानवीय। अत: यदि वह एक बार शस्त्र उठा लेता है (भले ही उसे ऐसा आत्मरक्षार्थ ही करना पड़ा हो) तो उसे सहज ही त्याग नहीं पाता है। फलत: शस्त्र और उनका संचालन उसके जीवन के अभिन्न अंग बन जाते हैं। वह इनके सहारे क्रूर एवं जघन्य कर्म भी करना शुरू कर देता है और जैसे-जैसे उसे सफलता मिलती जाती है, उसका मनोबल और दुस्साहस बढ़ता चला जाता है। परन्तु ऐसे लोगों के विरुद्ध आक्रोश भी बहुत तेजी से पनपता है और उसके बहुत-से विरोधी बन जाते हैं। ऐसे में वह अपने किसी विरोधी द्वारा अथवा प्रशासन के व्यवस्थापकों द्वारा मारा जाता है। कभी-कभी तो वह स्वार्थ के चलते अपने ही लोगों के विश्वासघात का शिकार बन जाता है। शान्तिप्रिय समाज भी अधैर्य की अवस्था में ऐसे समाज-कंटकों के विरुद्ध उठ खड़ा होता है और उनका अन्त करके ही दम लेता है। तात्पर्य यह कि अमानवीय और अनुचित कर्म करने वालों का जीवन बहुत लम्बा नहीं होता और उनका अन्त शीघ्र ही होता है। इसी यथार्थ को राल्फ वाल्डोट्राइन ने अपने परिवेश के अनुसार कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है—**जो शस्त्र उठाता है उसका अन्त भी शस्त्र के द्वारा ही होता है।**

(11) पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इस कारण यह अनुशासन, परम्परागत मान्यता, संस्कार, दायित्व ---- प्रभृति अनेक ऐसे बन्धनों से बँधा हुआ है जिन्हें स्वीकार करना उसकी मजबूरी कही जा सकती है। परन्तु ये बन्धन उसकी केवल उन गतिविधियों (उन्मुक्तता/स्वच्छन्दता) पर रोक लगाते हैं जो उसे पूरी तरह स्वार्थी बना अमानवीय आचरण करने के लिए प्रेरित (विवश) करती हैं। अन्यथा इनकी व्यवस्था का मूल उद्देश्य तो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में सुयोग ही देना है। अत: इनके बन्धन में बँधा हुआ व्यक्ति अपनी क्षमता का सुनियोजित उपयोग कर अपनी इच्छा/आकांक्षा या महत्त्वाकांक्षा की सहज पूर्ति कर सकता है। इसके विपरीत व्यक्ति पराधीन होते ही अपने इस प्रकार के सारे अधिकारों से हाथ धो बैठता है। गुलाम व्यक्ति अपनी इच्छा/अनिच्छा तो दूर किसी अनुचित प्रसंग पर अपना विरोध तक व्यक्त करने का अधिकार खो बैठता है। यहाँ उसके शासक या स्वामी की इच्छाएँ ही सर्वोपरि होती हैं। ऐसे व्यक्ति सर्वथा क्रूर, संवेदनाशून्य और नितान्त स्वार्थी होते हैं जो गुलाम या पराधीन व्यक्ति का व्यापक शोषण करते हैं। फलत: गुलाम व्यक्ति की सुख-शान्ति की चाहत एक आधारहीन कल्पना बनकर रह जाया करती है। इसी कारण पराधीनता को एक बहुत बड़ा अभिशाप मानते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने स्वाधीनता के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा, **''कर विचार देखहु मन माँही। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।''**

अतः शोषण ... ... से मुक्ति प्राप्त कर ले।

(16) हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि हाथ।

जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण प्रायः आस्थावादी होता है और आस्थावादिता ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करती है। इस मान्यता के अनुसार सृष्टि की समस्त गतिविधियों का सूत्रधार ईश्वर है। उसकी इच्छा के अनुसार ही सृष्टि के समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं। वही व्यक्ति के कर्म-फल का निर्धारक और प्रदाता है। सम्भव है कि इन्सान को कभी उसकी अपेक्षा से कम या अधिक फल मिल जाय, जिसे भाग्य या दुर्भाग्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। चूँकि इन्सान केवल कर्म कर सकता है, तदनुसार फल की प्राप्ति उसके अधिकार-क्षेत्र में नहीं है। अतः विशिष्ट उपलब्धियाँ मिलने पर इन्सान को न तो अधिक प्रसन्न होना चाहिए और न ही क्षति या हानि होने पर विशेष दुःखी या विषादग्रस्त। ऐसी मानसिकता जहाँ हार, पराजय या असफलता अथवा घोर निराशा के क्षणों में इन्सान को मारक अवसाद से ग्रसित होने से बचा लेती है वहीं विजय, सफलता, उपलब्धियों अथवा आनन्द के विशेष अवसरों पर उसे किसी भ्रम का शिकार होने से भी बचाती है। हमें जीवन के संघर्ष में हर क्षण यह बात याद रखनी चाहिए कि लाभ, जन्म (जीवन) या यश की उपलब्धि की सुखद अनुभूति कराने वाला ईश्वर हमें हानि, मरण या अपयश की पीड़ा भी सहन करने के लिए विवश कर सकता है। अतः प्रत्येक इन्सान को जीवन में यदि सुख-शान्ति चाहिए तो इस यथार्थ को निरन्तर अपने अन्तर्मन में बिठाए रखना चाहिए कि **हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि हाथ।**

प्रभृति शब्द लिख जाते है। (प्रत्येक पत्र में भवदीय और नाम अंकित करना आवश्यक नहीं होता।) अंकित किया जाता है। फिर बायीं तरफ संलग्न शीर्षक के अन्तर्गत संलग्नों की संख्या या क्रमबद्ध रूप से उनका उल्लेख करते हैं।

यदि पत्र की प्रतिलिपि अन्य कार्यालयों या अधिकारियों को भेजनी हो तो एक बार पुनः पत्रांक और दिनांक अंकित कर यह टिप्पणी लिखते हैं—प्रतिलिपि निम्न को सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रेषित है (या ऐसी ही दूसरी पंक्ति जो अपेक्षित हो)। फिर, प्राप्तकर्ता (ओं) का क्रमशः नाम, पद नाम एवं पता अंकित करते हैं। अन्त में एक बार पुनः प्रेषक अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर किया जाता है और उसका नाम, पद नाम तथा पता अंकित किया जाता है। यह हस्ताक्षर दूसरे अधिकारी द्वारा भी अपेक्षानुसार किया जा सकता है। नीचे के इस अंश को पृष्ठांकन कहते हैं। यदि एक ही अधिकारी को मूल पत्र और पृष्ठांकन पर हस्ताक्षर करना हो तो वह केवल पृष्ठांकन पर हस्ताक्षर करता है। ऊपर (मूल पत्र पर) हस्ताक्षर शब्द (या Sd.) अंकित कर दिया जाता है।

1. सरकारी-पत्र

कार्यालय-प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धौलपुर (राज.)

दिनांक : 15-10-2001

पत्रांक : रास्नामधौ/छात्रसंघ/2001-2002/1575

सेवा में,

पुलिस अधीक्षक

धौलपुर (राज.)

विषय—महाविद्यालय के छात्र-संघ चुनाव में कानून-व्यवस्था बनाए रखने के क्रम में।

महोदय,

उक्त विषय में सूचित कर लेख है कि महाविद्यालय में सत्र 2001-2002 के लिए छात्रसंघ का चुनाव संलग्न कार्यक्रम के अनुसार सम्पन्न होने जा रहा है। इस बार स्थानीय लोगों की दिलचस्पी के कारण छात्र-छात्राओं के मध्य उत्साह के साथ-साथ उत्तेजना का वातावरण भी निर्मित हो गया है। कोई छोटी-सी बात भी बड़े विवाद का कारण बन सकती है।

अतः आग्रह है कि संलग्न कार्यक्रमानुसार महाविद्यालय परिसर में छात्रों की गतिविधियों पर नजर रखने तथा उन्हें नियन्त्रित करने के लिए समुचित पुलिस-बल तैनात करने की कार्यवाही सम्पन्न करावें।

भवदीय

हस्ताक्षर

प्राचार्य

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

धौलपुर (राज.)

संलग्न : 1

पत्रांक : रा स्ना म धौ/छात्रसंघ/2001-2002/1576-1578 दिनांक : 15-10-2001

प्रतिलिपि निम्न को सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रेषित है—

1. शहर कोतवाल, कोतवाली, धौलपुर (राज.)।
2. थाना प्रभारी, थाना निहालगंज, धौलपुर (राज.)।
3. चौकी प्रभारी, पुलिस चौकी, रेलवे स्टेशन, धौलपुर (राज.)।

हस्ताक्षर
प्राचार्य
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
धौलपुर (राज.)

विशेष—(1) उक्त पत्रों में केवल प्रथम पत्र पर पत्रांक ऊपर लिखा जाएगा। शेष प्रतियों पर पत्रांक नीचे लिखते हैं। इसी प्रकार पत्रांक में (नीचे के पत्रांक में) केवल प्रथम एवं अन्तिम पत्रांक ही लिखा जाता है। [वर्तमान में सम्बोधन हेतु प्रयुक्त सेवा में शब्द का प्रचलन भी बन्द होता जा रहा है।

(2) ध्यान रखें प्रेषक अधिकारी प्रथम पत्र पर ऊपर तथा शेष पत्रों पर नीचे हस्ताक्षर करता है। सम्बन्धित लिपिक/प्रारूप लेखक/प्रेषक लिपिक इन पत्रों पर या तो **'हस्ताक्षर'** शब्द अथवा 'Sd' लिख देता है।

(3) प्रतिलिपियों में नीचे के अंश को ही पृष्ठांकन कहते हैं। प्रथम या मूल पत्र के साथ यह अंश प्राय: संलग्न नहीं किया जाता है।

कार्यालय—जिला शिक्षा अधिकारी (माध्यमिक शिक्षा-छात्र) अलवर (राज.)

क्रमांक : एफ 2(18) जि.शि./स्था/2001 दिनांक : 25-07-2001

कार्यालय-आदेश

निम्न व्यक्तियों को 2500/- प्रतिमाह के स्थिर मानदेय के आधार पर 6 माह के लिए अंशकालीन लिपिक पद पर नियुक्त किया जाता है। वे अगले महीने की प्रथम तारीख से अपना कार्यभार ग्रहण कर लें—

1. श्री रामस्वरूप मीना
2. श्रीमती हरदेवी शर्मा

हस्ताक्षर
जिला शिक्षा अधिकारी
(माध्यमिक शिक्षा-छात्र)
अलवर (राज.)

दिनांक : 25-07-2001

क्रमांक : एफ. 2(18) नि.शि./स्था/2001/576-58/2

प्रतिलिपि निम्न को सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु प्रेषित हैं—

1. श्री रामस्वरूप मीना, 576, स्कीम नं. 10, विवेक विहार, अलवर (राज.)।
2. श्रीमती हरदेवी शर्मा, 15, मोतीडूँगरी, अलवर (राज.)
3. संस्थापन शाखा।
4. लेखा शाखा (2 प्रति)
5. रक्षित पत्रावली।

1500 शब्द के मध्य है।)

समय का सदुपयोग : जीवन की सफलता का मूलाधार

रूपरेखा

1. भूमिका।
2. समय के सदुपयोग का आशय।
3. समय के सदुपयोग की विधि।
4. समय के सदुपयोग से लाभ।
5. निष्कर्ष।

1. भूमिका—हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार उसमें विराजमान तीन विशिष्ट शक्तियों को माना है जिन्हें उन्होंने शक्ति का त्रिकोण कहा है। ये त्रिकोण हैं—इच्छा, ज्ञान और क्रिया। मनुष्य अनन्त इच्छाओं का आगार है। कभी भी, कहीं भी, किसी भी प्रकार की कोई भी इच्छा मनुष्य के अन्तस्थल में कभी भी जन्म ले सकती है। किन्तु विधाता ने मनुष्य को ज्ञान के रूप में एक अंकुश, कसौटी या गुरु भी प्रदान किया है। किसी भी इच्छा की पूर्ति हेतु तत्पर होने के पूर्व इसका उपयोग किया जाना आवश्यक है, क्योंकि ज्ञान जहाँ इच्छा का मूल्यांकन कर यह निर्देशित करता है कि वह संगत है या नहीं, वहीं यह निर्देश भी देता है कि यदि यह संगत है तो उसकी पूर्ति का उद्यम किस प्रकार किया जाय। तद्नुसार कार्य करने से सफलता सहज ही मिल जाती है। ऐसे में जो सुखद अनुभूति होती है उसी को **'आनन्द'** कहते हैं और यही मनुष्य की सबसे बड़ी चाहत होती है। परन्तु यह समूची प्रक्रिया सकुशल तब सम्पन्न होती है जब मनुष्य सुविचारित योजना के अनुसार कार्य करता है। किसी समय विशेष में जो सन्दर्भ (कार्य) सहज ही साध्य होते हैं वे बदले समय में

असाध्य भी बन जाया करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति की सफलता में अवसर का बहुत बड़ा हाथ होता है। इसके सार्थक उपयोग को ही **'समय का सदुपयोग'** कह सकते हैं।

2. समय के सदुपयोग का आशय—समय के सदुपयोग के दो प्रमुख आशय हैं—(i) जीवन के प्रत्येक पल का रचनात्मक उपयोग तथा (ii) प्रत्येक उचित अवसर का उपयोग। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि आलस्य समय के सदुपयोग का सबसे प्रबल बाधक तत्त्व है और तत्परता सबसे प्रबल साधक तत्त्व।

उक्त सन्दर्भ को एक सामान्य प्रतीक द्वारा सहज ही समझा जा सकता है। रेलगाड़ी बहुत-से लोगों को लेकर अपने गन्तव्य की ओर रवाना होती है। जिन्हें अपनी मंजिल तक पहुँचना होता है वे समय से स्टेशन पहुँचते हैं, टिकट लेते हैं और निर्दिष्ट स्थान पर (प्लेटफार्म पर) पहुँचकर गाड़ी के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं। गाड़ी के आ जाने पर उसमें सवार होते हैं और अपनी मंजिल पर पहुँचते हैं। परन्तु असावधान और आलसी लोग स्टेशन पर पहुँचकर भी या तो ट्रेन में बैठ नहीं पाते हैं या फिर अपने गन्तव्य पर उतर नहीं पाते हैं। कारण यह है कि ट्रेन किसी का इन्तजार नहीं करती। वह अपनी निर्धारित व्यवस्था के अनुसार गतिशील रहती है। समय की ट्रेन का यथार्थ भी कुछ ऐसा ही है। जरा-सी चूक कभी-कभी भारी पड़ जाती है।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी कवि कबीर ने इस प्रसंग में तो यहाँ तक कह दिया है कि कार्य का पूर्वानुमान लगाकर तत्काल उसकी पूर्णता के लिए सक्रिय हो जाना चाहिए—

कािल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करोगे कब॥

3. समय के सदुपयोग की विधि—प्रत्येक व्यक्ति, समाज या संस्थान की कार्य करने की अपनी एक शैली होती है। इसके अनुसार ही लोग सक्रिय होते हैं। परन्तु कुछ सन्दर्भ ऐसे भी होते हैं जो सभी पर समान रूप से लागू होते हैं। समय के सदुपयोग का यथार्थ भी ऐसा ही है। इस प्रसंग में हम एक योजनाबद्ध समय-सारिणी का उल्लेख कर सकते हैं जिसके अनुसार व्यक्ति अपने कृतित्व को योजनाबद्ध तरीके से निर्धारित कर लेता है। फलतः उसके कार्य सहज ही सम्पन्न होते चले जाते हैं। इसके मूल में यह यथार्थ भी सक्रिय होता है कि व्यक्ति अपने कार्य की सफलता या असफलता का अनुमान सहज ही लगा लेता है। फलतः उसके अन्तर्मन में संघर्षशीलता एवं मनोबल का तत्त्व निरन्तर प्रबल बना रहता है। अतः यह आवश्यक है कि जिस प्रकार लक्ष्य-भेदन के दौरान अर्जुन को तन्मयता की अवस्था में केवल अपना लक्ष्य दृष्टिगत् होता था उसी प्रकार व्यक्ति को अपने उद्देश्य की साधना के दौरान केवल अपना उद्देश्य ही दृष्टिगत होना चाहिए। इधर-उधर के प्रपंचों में फँसने से न केवल व्यक्ति की संघर्षशीलता प्रभावित होती है बल्कि कभी-कभी उसकी सफलता भी असफलता में परिवर्तित हो जाती है। समकालीन वैज्ञानिक युग में तो पलभर का विलम्ब भी कभी-कभी बहुत बड़ी विसंगति का जनक बन जाता है। अतः सफल जीवन हेतु एक आदर्श समय-सारिणी का निर्धारण आवश्यक है।

4. समय के सदुपयोग से लाभ—आकांक्षा की सहज पूर्ति या उद्देश्य की सहज सिद्धि से बढ़कर किसी के जीवन की शायद ही कोई लालसा हो। समय के सदुपयोग से ऐसा सहज ही

सम्भव हो जाया करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्यक्ति में विविध प्रकार के कार्य करने की असीमित क्षमता विद्यमान है। इसी कारण प्रत्येक अध्यवसायी व्यक्ति सुख, शान्ति और आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करता है; विशेषकर वे जो अपना कार्य समय की नज़ाकत को देखते हुए एक व्यवस्थित कार्यक्रम के अनुसार सम्पन्न किया करते हैं। पश्चिमी देशों की वर्तमान सफलता के मूल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, कठोर परिश्रम, योजनाबद्ध सक्रियता-प्रभृति सन्दर्भों के साथ-साथ एक-एक पल के सदुपयोग की भी महती भूमिका है। इसी क्रम में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि समय, विधाता की एक ऐसी देन है जो हर किसी को समान मात्रा में उपलब्ध है। इसके विपरीत जीवन के अन्य बहुत से सन्दर्भ असीमित हैं। इनमें से बहुतों को खोकर पुनः पाया जा सकता है, परन्तु समय को कदापि नहीं। अतः समय का अपव्यय एक ऐसा अपव्यय है जिसकी पूर्ति सर्वथा असम्भव है। इसीलिए किसी मनीषी ने यह स्पष्ट घोषणा की थी कि—**आलस्यं हि मनुष्याणाम् शरीरस्थो महान् रिपुः।**

हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि समय के सागर में ज्वार-भाटा नहीं होता। अपनी जीवन-नौका को संघर्ष, श्रम और सुनियोजन की पतवार के सहारे जो जितना गतिशील बनाता है, उसकी जीवन-यात्रा उपलब्धियों के उतने ही विशिष्ट बंदरगाहों से होकर आगे बढ़ती है। यह उक्ति इसी यथार्थ का समर्थन करती है जिसके अनुसार—**कदम चूम लेती है आकर के मंजिल, मुसाफिर अगर अपनी हिम्मत न हारे।**

5. निष्कर्ष—मनुष्य अपनी मूल प्रकृति में सुख-शान्ति का चहेता है। 'आनन्द' उसकी सबसे बड़ी वांछा (चाहत) होती है। लेकिन यह तभी सम्भव है जबकि मनुष्य की वांछित समस्त योजनाएँ सहज ही पूरी हो जाया करें। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य में असीमित क्षमताएँ हैं। प्रकृति की एक-एक बाधा को नत मस्तक कर उसने निरन्तर इसका परिचय दिया है। आज सर्वत्र उसकी श्रेष्ठता का डंका बज रहा है। अतः यदि व्यक्ति द्वारा अपनी रचनात्मक क्षमताओं का सुनियोजित एवं सार्थक उपयोग किया जाय तो उसे व्यापक सफलताएँ सहज ही मिल सकती हैं। हर सफल व्यक्ति इसका एक उपयुक्त उदाहरण माना जा सकता है।

विश्वव्यापी संगठन की भारतीय इकाई-भारत स्काउट एण्ड गाइड में प्रातःकाल (प्रभाती के रूप में) गायी जाने वाली निम्न पंक्तियाँ इसी यथार्थ की घोषणा-सी करती है—

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है॥

अतः यह निर्विवाद सत्य है कि समय का सदुपयोग जीवन की सफलता का मूलाधार है।

राजस्थान में अकाल (सूखे) की समस्या : कारण और निवारण

रूपरेखा

1. भूमिका।
2. अकाल (सूखा) का आशय।
3. अकाल (सूखा) का कारण।
4. रोकने के उपाय।

5. अकाल का दुष्प्रभाव।
6. भावी सम्भावनाएँ।
7. निष्कर्ष।

1. भूमिका—मरुधरा के रूप में ख्यातिलब्ध राजस्थान प्रान्त की भौगोलिक संरचना ही कुछ ऐसी है कि अकाल से अभिशप्त होना उसकी नियति बन गया है। यहाँ मानसून या तो पहुँचता ही नहीं है अथवा पहुँचता भी है तो सर्वथा अशक्त होकर। फलतः यहाँ देश के दूसरे भागों की तुलना में बहुत कम वर्षा होती है। पूर्वी भाग से पश्चिमी भाग की तरफ क्रमशः बढ़ने पर इसका औसत कम होता चला जाता है। यही कारण है कि पश्चिमी राजस्थान मरुस्थल बन चुका है जिसे **थार का मरुस्थल** कहा जाता है। वर्षा की निरन्तर कमी के कारण यहाँ की पारिस्थितिकी बुरी तरह प्रभावित हो रही है और मरुस्थल का निरन्तर विकास हो रहा है। 1959-60, 1981-82, 1983-84, 1987-88, 1990-91 में राजस्थान के विविध हिस्से अकालग्रस्त रहे हैं।

विगत तीन वर्षों (1998-2001) से तो मानसून राजस्थान की धरती से जैसे रूठ ही गया था। भयंकर सूखे के कारण यहाँ का जनजीवन बुरी तरह प्रभावित हुआ है, क्योंकि यहाँ की कृषि, पशुधन या विविध उद्योग-धन्धे ही नहीं अनेक नगरों की आबादी भी वर्षा के जल पर ही पूरी तरह निर्भर है। फलतः यहाँ की विविध विकास योजनाएँ मंदगामी बन गयी हैं और सरकारी स्तर पर सम्पन्न होने वाले रचनात्मक कार्य थम-से गये हैं।

2. अकाल (सूखा) का आशय—**'अकाल'** शब्द का अर्थ है—**'बुरा समय'**। यह देश कृषि-प्रधान देश है तथा यहाँ की प्राकृतिक संरचना भी ऐसी है कि अनेक हिस्सों में कृषि, वर्षा के जल पर ही निर्भर है। यद्यपि अकाल, अतिवृष्टि या अनावृष्टि (सूखा)—दोनों ही स्थितियों में अस्तित्व में आता है, परन्तु सूखाजन्य अकाल ही प्रायः इस विशेषण से सम्बोधित होता है।

सूखा पड़ने का प्रमुख कारण वर्षा की न्यूनता या विभिन्न क्षेत्रों में समुचित रूप से वर्षा न होने से उत्पन्न जल का अभाव है। परन्तु जल के व्यापक उपयोग के कारण अलग-अलग क्षेत्रों में सूखा का अलग-अलग आशय लिया जाता है। मौसम वैज्ञानिकों के लिए इसका आशय है—औसत से कम वर्षा जबकि किसानों के लिए पौधों की वृद्धि हेतु मिट्टी में आवश्यक नमी का अभाव। पशुपालकों के लिए इसका आशय है—हरियाली, चारे और पीने के पानी का अभाव जबकि जल-वैज्ञानिकों के लिए इसका मतलब है—बाँधों और नहरों में सिंचाई तथा विद्युत उत्पादन के लिए अपेक्षित मात्रा में जल की कमी। महानगरों एवं नगरों में जलापूर्ति करने वाले जल निगम के लिए इसका आशय है—जलाशयों में जल के स्तर में होने वाली कमी, जिसके कारण उन्हें नियमित जलापूर्ति में कटौती करनी पड़ती है।

3. अकाल (सूखा) का कारण—राजस्थान में निरन्तर पड़ने वाले सूखे प्रमुख कारण यह है कि यहाँ की वार्षिक वर्षा का औसत मात्र 575 मिलीमीटर है। यह देश के अन्य भागों की तुलना में बहुत ही कम है। यह औसत भी पूरे राज्य में एक समान नहीं है। यहाँ के 5 जिलों में वर्षा का वार्षिक औसत मात्र 300 मिलीमीटर या उससे भी कम है, 7 जिलों में 300 से 500 मिलीमीटर के मध्य वार्षिक वर्षा होती है। शेष 20 जिलों में वर्ष भर में 500 मिलीमीटर से अधिक वर्षा होती है। प्रदेश में औसत वर्षा के दिवस भी बहुत कम होते हैं। जहाँ पूर्वी राजस्थान

में इनका औसत 34.3 दिन है वहीं पश्चिमी राजस्थान में मात्र 16.8 दिन। यह वर्षा भी प्राय: अपेक्षा के अनुसार नहीं होती है। जल और मृदा संरक्षण हेतु आवश्यक वाटरशेड के अभाव से वर्षा के इस जल का भी 80 प्रतिशत भाग या तो व्यर्थ बह जाता है अथवा वाष्पीकृत हो जाता है। अत: जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं है वहाँ सूखे का व्यापक प्रभाव पड़ता है। सूखे के प्रभाव का एक प्रमुख कारण ग्वार एवं मोठ जैसी सूखा अवरोधी फसलों के प्रामाणिक बीजों की अनुपलब्धता भी है। प्रदेश में चरने वाले मवेशियों की भारी संख्या के कारण भी हरियाली की कमी हो रही है, जिससे जल और मृदा का अवक्षरण निरन्तर बढ़ता चला जा रहा है।

4. रोकने के उपाय—राज्य में अकाल का प्रभाव कम करने के लिए जल और मृदा के संरक्षण हेतु वाटरशेड की उपादेयता को राज्य सरकार ने समझा तो है किन्तु 244 लाख हेक्टेयर के लक्ष्य के विपरीत मात्र 19 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में ही वाटरशेड के विकास का कार्यक्रम लागू किया गया है। यह सम्पूर्ण लक्ष्य का मात्र 8 प्रतिशत है। फलत: वर्षा के जल का लगभग 80 प्रतिशत भाग व्यर्थ बह जाता है। यदि इतने ही जल का सदुपयोग कर लिया जाय तो राज्य का कायाकल्प हो सकता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है—श्रीगंगानगर और हनुमानगढ़ जिलों का विकास। यहाँ 300 मिलीमीटर से भी कम वार्षिक वर्षा होती है, किन्तु नहरों द्वारा सिंचाई की अतिरिक्त और वैकल्पिक व्यवस्था होने के कारण यहाँ सूखे का प्रभाव अधिक नहीं पड़ता है। यदि राज्य के अन्य जिलों को भी सिंचाई की यह सुविधा मिल जाय तो वहाँ भी इसी प्रकार का विकास दृष्टिगत् हो सकता है। इसके साथ ही चरने वाले मवेशियों को ध्यान में रखते हुए वहाँ हरियाली बनाए रखने का उद्यम किया जाना चाहिए। दुर्भाग्यवश यहाँ के लोग वृक्षों की अवैध कटाई तो करते हैं परन्तु इसका दुष्परिणाम नहीं जानते हैं। यदि उन्हें सचेष्ट किया जाय तो इस दिशा में भी व्यापक परिवर्तन आ सकते हैं।

राजस्थान के सुदूरवर्ती ग्रामीण एवं पिछड़े हुए क्षेत्रों में कृषि आधारित उद्योग, परम्परागत कला, शिल्प-उद्योग आदि के अविकसित होने के कारण यहाँ की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर ही आश्रित है। साथ ही यहाँ के कृषक अभी भी पुरानी पद्धति से ही कृषि करते हैं। नये उद्योगों की स्थापना से रोजगार के अवसर जुटा कर भी इस विसंगति का दुष्प्रभाव कम किया जा सकता है। अकाल राहत कार्य भी किसी ऐसे रचनात्मक सन्दर्भ से जुड़कर चलाए जाने चाहिए जो वर्तमान के साथ-साथ भविष्य के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकें। नगरों या महानगरों में जल-वितरण एक सुनिश्चित योजना के अनुसार होना चाहिए।

5. अकाल का दुष्प्रभाव—वस्तुत: राजस्थान का पश्चिमी हिस्सा; जो लगभग अविकसित है और जहाँ के लोगों की जीविका का मुख्य साधन पशुपालन है, अकाल से सर्वाधिक प्रभावित होता है। वैसे इस क्षेत्र के निवासियों का यह स्वभाव-सा बन गया है कि गर्मी के दिनों में वे कुछ समय के लिए अपने पशुधन के साथ हरियाली वाले इलाके में चले जाते हैं। वर्षा होते ही वे पुन: घर लौट आते हैं। परन्तु अकाल के दिनों में उनका यह प्रवास दीर्घ अवधि का होता है। अपने पशुओं के साथ ये जिन इलाकों से गुजरते हैं, वहाँ के निवासियों (स्थानीय लोगों) से प्राय: इनका विवाद होता रहता है। इस कारण ये किसी एक स्थान पर स्थिर नहीं रह पाते हैं। फलत: इनके बीमार और अशक्त पशुओं की अकाल मौत होने तथा स्वस्थ पशुओं के कमजोर होते जाने से उनके पशुधन की व्यापक क्षति होती है। उनके परिवारी जन भी जो प्राय: उनके साथ ही रहते हैं, इन्हीं विसंगतियों से त्रस्त होते हैं।

इसके साथ ही अकाल के दिनों में वन सम्पदा वाले स्थानों में वृक्षों की अनुचित तरीके से कटाई होती है। जिन उद्योगों को जल की अधिक आवश्यकता होती है, उनका उत्पादन प्रभावित होता है। फसलें विनष्ट हो जाती हैं तो लोग मजदूरी की तलाश में शहरों की तरफ भागते हैं। यद्यपि सरकार द्वारा अकाल राहत योजना के अन्तर्गत रोजगार के भरपूर अवसर जुटाकर पीड़ितों की भरपूर मदद की जाती है, परन्तु इससे दूसरी विकास योजनाएँ अवरुद्ध हो जाती हैं। ऐसे में राज्य की विकास की गति मन्द पड़ जाती है।

6. भावी सम्भावनाएँ—विगत तीन वर्षों से निरन्तर अकाल पड़ने के कारण राज्य सरकार के साथ-साथ केन्द्र सरकार का ध्यान भी इस ओर गया है। ऐसे में यह उम्मीद की जा सकती है कि पश्चिमी राजस्थान की परिस्थितियों को देखते हुए वहाँ की विकास योजनाएँ संचालित की जाएँगी। इन्दिरा गाँधी नहर का विस्तार करके तथा कृषि के साथ-साथ स्थानीय उद्योगों को बढ़ावा देकर यहाँ के लोगों की जिन्दगी में सुख-शान्ति एवं स्थायित्व का समावेश किया जा सकता है। सैनिक-सामरिक दृष्टि से भी इस क्षेत्र का बहुत महत्त्व है, क्योंकि यहाँ भारत-पाक सीमा पर्याप्त लम्बी है। पूर्व में यहाँ अनेक वस्तुओं की तस्करी का धन्धा खूब फल-फूल रहा था, यद्यपि सेना की सक्रियता से वह लगभग बन्द हो चुका है, परन्तु इस पर सार्थक रोक तभी लग सकती है जबकि यहाँ विकास-योजनाओं की सार्थक क्रियान्विति हो। इस बार यहाँ का अकाल व्यापक रूप से चर्चित हुआ है। अतः उम्मीद यही है कि नीति-निर्धारक एवं केन्द्र तथा राज्य सरकारें इसके प्रति गम्भीर बनकर इस दिशा में सार्थक पहल करेंगे।

7. निष्कर्ष—अकाल किसी महामारी से कम नहीं। जो राज्य और उसके जो क्षेत्र इसकी गिरफ्त में आकर लगातार तीन वर्षों से छपटपटा रहा हो, उसकी व्यथा को संवेदनशील बनकर ही समझा और अनुभव किया जा सकता है। धन-जन की व्यापक क्षति करने वाला यह अकाल लोगों को संस्कारविहीन, स्वार्थी और निष्करुण बना देता है। अभाव में संघर्ष करते-करते लोगों की जिजीविषा दम तोड़ देती है। अतः ऐसे में उनके लिए ऐसी योजनाओं का निर्धारण एवं क्रियान्वयन होना चाहिए जिसके प्रभाव से वे स्वयं इतने समर्थ हो जायँ कि ऐसी आपदा से स्वतः साक्षात्कार कर सकें। अन्यथा ऐसे इलाके वीरानी का आलम भी देख सकते हैं।

सुखद प्रसंग यही है कि अकाल से निपटने के लिए गम्भीर चिन्तन आरम्भ हो गया है। इसके उपरान्त तो हमारा यह विश्वास स्वतः ही जाग्रित हो उठता है—

हम होंगे कामयाब, हम होंगे कामयाब, हम होंगे कामयाब एक दिन...........

राजस्थान में पर्यटन की सम्भावनाएँ

रूपरेखा

1. भूमिका।
2. राजस्थान में पर्यटन की अवस्था।
3. पर्यटन के विकास की सम्भावनाएँ।
4. राजस्थान को पर्यटन से लाभ।
5. पर्यटन से हानि।
6. सुरक्षा एवं संरक्षा के उपाय।
7. निष्कर्ष।

1. भूमिका— सैर कर दुनियाँ की गाफिल, जिन्दगानी फिर कहाँ,
जिन्दगी गर कुछ रही तो, नौजवानी फिर कहाँ।

उक्त कथन यह स्पष्ट करता है कि मानव समुदाय ने पर्यटन को कितना महत्त्व प्रदान किया है। वस्तुतः जिज्ञासा की प्रवृत्ति इन्सान की जन्मजात् विशिष्टता रही है। इसके कारण वह अपने परिवार, समाज, क्षेत्र या परिवेश से बाहर निकलकर दूसरों के बारे में भी जानना चाहता है। इसके लिए कभी-कभी उसने अदम्य साहस का परिचय भी दिया है। यही कारण है कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ समूचे विश्व की जानकारी प्राप्त की गयी और धीरे-धीरे सम्पूर्ण विश्व के लोग एक-दूसरे से परिचित हो, पारस्परिक सम्पर्क-सूत्र में बँध गए।

उक्त प्रसंग में उल्लेखनीय है कि विविध क्षेत्रों की अद्भुत भौगोलिक संरचना; पारिस्थितिकी; वैज्ञानिक या औद्योगिक विकास; ऐतिहासिक, पौराणिक या धार्मिक संकल्पनाएँ—वे विविध सन्दर्भ हैं जिनसे रू-ब-रू होने के लिए जिज्ञासु इन्सान निरन्तर उत्सुक रहता है। कभी-कभी अपने परिवेश से ऊब करके भी वह दूसरे क्षेत्र में पहुँचकर मानसिक शान्ति प्राप्त करना चाहता है। ऐसे और भी बहुत-से सन्दर्भ हैं जिन्हें पर्यटन का प्रेरक या जनक माना जा सकता है।

2. राजस्थान में पर्यटन की अवस्था—स्वनामधन्य राजपूताने की धरती पुरातन काल से ही अपनी भौगोलिक संरचना और रोमांचभरी ऐतिहासिक गतिविधियों के लिए विख्यात रही है।

यहाँ के परिवेश ने यहाँ के निवासियों में शौर्य, वीरता, संघर्षशीलता और स्वाभिमान के साथ-साथ मातृभूमि के प्रति अप्रतिम लगाव और अपने शासकों के प्रति वफादारी का भाव कूट-कूट कर भरा है। फलतः यहाँ का चप्पा-चप्पा वीरता के ऐसे कारनामों का जीवन्त दस्तावेज बन बैठा है जिसे सुनाने और सुनने वाले—दोनों ही रोमांचित हो उठते हैं। आये दिन संघर्ष होने के कारण संघर्षशीलता यहाँ के निवासियों के चरित्र की स्वाभाविक विशिष्टता बन गयी। इन्हीं संघर्षशील परिस्थितियों के कारण यहाँ के शासकों और सामन्तों ने अपने राज्य की सुरक्षा हेतु किलों और गढ़ों का निर्माण करवाया। आज ये किले अपनी वास्तुकला की उत्कृष्टता के साथ ही अपनी रोमांचक ऐतिहासिक गाथाओं के कारण लोगों के आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं।

वीर योद्धाओं की यह धरती मानवता के प्रबल समर्थक अहिंसावादी महापुरुषों की भी कर्म एवं जन्मभूमि भी रही है। इन महापुरुषों ने अपने उपदेशों के माध्यम से सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की कामना की है। इनके विचार केवल सैद्धान्तिक ही नहीं व्यावहारिक भी थे, उनमें भोगे हुए यथार्थ को समन्वित किया गया था। फलतः वे अपने समय में जनता द्वारा शिरोधार्य तो किये गये ही आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। इनकी साधना स्थलियाँ और इनके द्वारा स्थापित मन्दिर आज जहाँ एक तरफ श्रद्धालुओं की असीम श्रद्धा के केन्द्र बने हुए हैं, वहीं उनके निर्माण में कारीगरों ने अपनी शिल्पगत् दक्षता का जो जौहर बिखेरा है, वह कला-प्रेमियों को आज भी भाव-विभोर कर देता है।

इसके साथ ही रेतीले-टीले, हरे-भरे जंगल, उनमें विचरण करते वन्य जीव, भीषण गर्मी वाले स्थलों के साथ-साथ पानी को जमाव-बिन्दु की अवस्था में ला देने वाले पर्वत-शिखर, शरणागत की रक्षा हेतु स्वयं को दाँव पर लगा देने वाले महापुरुषों तथा स्वाधीनता के लिए हर प्रकार की वेदना का सहर्ष गरलपान करने वाली स्वाभिमानी दिव्य आत्माओं की लीला-स्थली के साथ-साथ आधुनिक वैज्ञानिक तीर्थस्थलों को अपने दामन में समेटे हुए राजस्थान की धरती का चप्पा-चप्पा पर्यटन की दृष्टि से स्वयं में आदर्श माना जा सकता है।

3. पर्यटन के विकास की सम्भावनाएँ—पूर्व के सन्दर्भों में यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि राजस्थान के चप्पे-चप्पे में वे विशेषताएँ विराजमान हैं जो एक आदर्श पर्यटक-स्थल के लिए आवश्यक होती हैं। थोड़े-से प्रचार-प्रसार से यहाँ के विविध स्थलों के प्रति जहाँ प्रचुर संख्या में पर्यटक आकर्षित होंगे, वहीं यहाँ पर्यटन से होने वाली आय का औसत देश के अन्य भागों से कहीं श्रेष्ठ रहेगा। कारण यह है कि यहाँ सड़कों का निर्माण एवं रख-रखाव जहाँ कम खर्चीला है वहीं वैज्ञानिक विकास के चलते यहाँ रेल लाइनों का जाल बिछाने की अनुकूल परिस्थितियाँ भी बन गयी हैं। यहाँ सैकड़ों ऐसी हवेलियाँ हैं जो वीरान पड़ी हुई हैं और जिन्हें बहुत कम खर्च में सैलानियों के ठहराव हेतु आदर्श होटलों में परिवर्तित किया जा सकता है। ऐसे प्रयास किये भी गए हैं जो सर्वथा सफल रहे हैं।

यहाँ की मनोरम लोककलाएँ, लजीज़ व्यंजन और आकर्षक पहनावा पर्यटकों के खाली समय को भी आनन्द पूरित करने में समर्थ हैं। यहाँ के निवासी अध्यवसायी और ईमानदार हैं। पर्यटन के विकास से इनमें से बहुतों को रोजगार मिलेगा और इससे विश्वास का एक ऐसा वातावरण बनेगा जो पर्यटन-उद्योग की सफलता की प्राथमिक आवश्यकताओं में से एक है। अतः यदि सरकारी स्तर पर थोड़ी-सी मदद मिल जाय तो निस्सन्देह राजस्थान राज्य भी पर्यटन

की दृष्टि से एक आदर्श राज्य बन सकता है। इसके लिए आर्थिक सन्दर्भ भी विशेष बाधक नहीं बन सकेंगे यदि प्रवासी राजस्थानी लोग इसमें थोड़ी-सी रुचि ले लें तो।

4. पर्यटन से लाभ—पर्यटन से होने वाला सबसे विशिष्ट लाभ यह है कि वह सम्बन्धित क्षेत्र की सभ्यता और संस्कृति के विकास में योग देता है। दो भिन्न-भिन्न संस्कृति या सभ्यता वाले लोग जब एक दूसरे के निकट आते हैं तो वे परस्पर कुछ-न-कुछ अवश्य सीखते हैं। वे स्थानीय लोग जो बाहर नहीं जा सकते हैं उन्हें दूसरों की सभ्यता और संस्कृति को पहचानने का अवसर मिलता है। साथ ही स्थानीय स्तर पर लोगों को रोजगार के भरपूर अवसर उपलब्ध होते हैं, आवागमन की सुविधाएँ समुन्नत होती हैं, व्यवस्था के स्तर में सुधार होता है, इस कारण लोगों के रहन-सहन के स्तर में बदलाव आता है। देश को प्रचुर संख्या में विदेशी मुद्रा उपलब्ध होती है। लाभ के इन विपुल सन्दर्भों को देखते हुए ही आज पर्यटन को उद्योग का दर्जा प्रदान किया गया है।

5. पर्यटन से हानि—यदि हमारी दृष्टि पर्यटन से होने वाले लाभों तक ही सीमित हो जाय तो पर्यटन से होने वाली हानियाँ कहीं बहुत ही घातक सिद्ध होंगी—यह सुनिश्चित है। सर्वप्रथम हानि तो यही होगी कि पर्यटन असीमित आय वाला रोजगार है। अतः इस क्षेत्र में भरपूर अवसरवादिता, लूट-खसोट एवं दादागीरी का वातावरण सहज ही निर्मित हो सकता है। प्रायः ड्राइवर, कुली, गाइड या होटल मालिक के रूप में कार्य करने वाले शक्तिशाली लोग कमजोर कर्मियों को दबाकर उनकी जीविका छीन लेते हैं। बिचौलियों को भरपूर कमीशन देकर पर्यटकों को मूर्ख बनाकर ठगा जाता है। अनेक पर्यटक स्थलों पर हस्तकला की सजी-धजी दूकानों का तो यथार्थ ही यही है। **'गेस्ट हाउस'** और **'पेंइंग गेस्ट योजना'** द्वारा अच्छी कमाई होने के कारण आज मध्यम वर्ग या सामान्य वर्ग के लोग अपने मकान के अधिक-से-अधिक हिस्से को **'गेस्ट हाउस'** के रूप में परिवर्तित कर रहे हैं। इससे परिवार के लोगों की निजी जिन्दगी (प्राइवेसी) प्रभावित हो रही है। उल्लेखनीय है कि आज पर्यटन के पीछे (कम-से-कम हमारे देश में) कोई गम्भीर सोच नहीं बल्कि अधिकांशतः मनोरंजन की मानसिकता सक्रिय है। अतः ड्रग्स, वेश्यावृत्ति, सतही मनोरंजन या अश्लील गतिविधियाँ पर्यटक-स्थलों की जीवन-शैली को विकृत बना रही हैं। आबादी के दबाव के कारण इन स्थलों की पानी-बिजली की सुविधाएँ लड़खड़ा रही हैं। ये स्थल पॉलीथीन के कचरे से निरन्तर पटते चले जा रहे हैं। पहाड़ों की खूबसूरत वादियाँ वाहनों के विषैले धुएँ और कर्ण-भेदी शोर से अपनी मनोरमता खो रही हैं।

6. सुरक्षा एवं संरक्षा के उपाय—उक्त सन्दर्भों के मद्देनजर राज्य सरकार का यह नैतिक दायित्व बनता है कि वह सर्वप्रथम पर्यटक-स्थलों के रूप में विकसित किये जाने वाले स्थलों का चयन कर उनसे जुड़े हुए विविध सन्दर्भों पर गहराई से विचार करे। उसकी समकालीन अवस्था के साथ उसके आगत स्वरूप का अनुमान लगाते हुए सभी सम्भावित विसंगतियों से निपटने का प्रयास किया जाना चाहिए। अतः एक स्पष्ट पर्यटन-नीति तो आवश्यक है ही, साथ-ही-साथ यह भी आवश्यक है कि मुख्य पर्यटक-स्थल के साथ-साथ कुछ अन्य पर्यटक स्थल भी विकसित किये जायँ ताकि कुछ ही स्थलों पर भीड़ का भारी दबाव न बने। पर्यटकों के लिए भी कुछ कठोर आचार-संहिता लागू किया जाना जरूरी है। पॉलीथीन का कचरा भीषण संकटों का जनक बन रहा है, अतः ऐसी वस्तुओं के सार्वजनिक प्रयोग/उपयोग पर रोक लगायी जानी

चाहिए जो इनमें बन्द (पैक) की जाती है। वाहनों की भी नियमित जाँच की व्यवस्था की जानी चाहिए।

7. निष्कर्ष—वस्तुतः पर्यटन एक स्वाभाविक मानवीय गतिविधि है। यह हमारी सोच को बदलता है, दूसरों को देखने और समझने का अवसर प्रदान करता है और हमारी संवेदनाओं को सशक्त बनाता है। **'हनीमून'** जैसे फैशन तो नव-विवाहितों को एक-दूसरे को भली-भाँति समझने और परस्पर निकट आने का अभिनव अवसर प्रदान करते हैं। परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसकी छोटी-से-छोटी भूल भी समाज पर व्यापक प्रभाव डाल सकती है। अतः एक सीमा से अधिक उन्मुक्तता का अवसर प्रदान करना अनुचित है। इसलिए पर्यटन को बढ़ावा देते समय उसकी विसंगतियों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। क्योंकि अनेक पर्यटक-स्थलों पर विसंगतियाँ इस कदर बढ़ रही हैं कि यदि इन पर यथाशीघ्र अंकुश न लगाया गया तो एक दिन ऐसा भी आ सकता है जबकि उन्हें पर्यटन हेतु बन्द कर दिया जाना ही शायद आवश्यक समझा जाय। परन्तु तब तक इतनी देर हो चुकी होगी कि हम चाहकर भी कुछ कर पाने में स्वयं को अक्षम अनुभव करेंगे।

आतंकवाद : कारण और निवारण

रूपरेखा

1. भूमिका।
2. विकास के कारण।
3. वर्तमान स्वरूप—(i) राष्ट्रीय स्वरूप, (ii) अन्तरराष्ट्रीय स्वरूप।
4. दुष्परिणाम।
5. समाधान के उपाय।
6. निष्कर्ष।

1. भूमिका—हिन्दी के सुप्रसिद्ध छायावादी रचनाकार जयशंकर प्रसाद ने मनुष्य की विशिष्टता का निदर्शन करते हुए उसे शक्ति का त्रिकोण माना है। ये त्रिकोण हैं—इच्छा, ज्ञान और क्रिया। मनुष्य अनन्त इच्छाओं का आगार है। इन इच्छाओं की पूर्ति की अभिलाषा मनुष्य के अन्तस्तल में जन्मजात् गुण के रूप में विद्यमान रहती है। मन, वाणी और कर्म से व्यक्ति अपनी इच्छाओं को कार्यरूप में परिणत करके अपनी चाहत को साकार किया करता है। लेकिन उपलब्धियों के सोपान पर आरूढ़ होते हुए व्यक्ति धीरे-धीरे आत्मकेन्द्रित बन दूसरों के सुख-दुःख से विमुख हो जाता है। फलस्वरूप धीरे-धीरे उसके भीतर आदिम प्रवृत्तियाँ प्रबल पड़ जाती हैं। इन्हीं आदिम प्रवृत्तियों के कारण मानवता बार-बार कलंकित हुई है। **'मत्स्य-न्याय'** की परम्परा ने वस्तुतः व्यक्ति की अन्ध महत्त्वाकांक्षा के साथ-साथ जन्म लिया है—यह कहना असंगत नहीं। इसी का युग-धर्म के अनुरूप परिवर्तित होता हुआ स्वरूप वर्तमान में **'आतंकवाद'** के नाम से जाना जाता है।

2. विकास के कारण—शक्ति एवं सामर्थ्य के सहारे मनुष्य ने सदैव विजय-श्री का वरण किया है। किन्तु सामाजिकता की स्थापना के साथ उसमें सुव्यवस्था बनाए रखने के निमित्त कुछ रीति-नीति तथा आचार-विचार सुनिश्चित किये गये थे। परन्तु व्यवस्था के इन नियमों के साथ ऐसे लोग भी समाज में आविर्भूत हुए जिनकी शक्तिजन्य मदमत्तता ने प्रत्येक सामाजिक आदर्श की अवहेलना की। सार्थक एवं उचित बाधाओं को बल-प्रयोग द्वारा अतिक्रमित करने का प्रयास या भय के सहारे अपनी इच्छा की सहज ही पूर्ति करने का यत्न-आतंकवाद के उद्भव और विकास का मूल कारण माना जा सकता है। ऐसे में आतंकवाद का उद्भव और विकास उस समय से माना जा सकता है, जिस समय से समाज में छोटे-बड़े, शासक-शासित या शोषक-शोषित की परम्परा आरम्भ हुई। व्यक्ति की अंधमहत्त्वाकांक्षा जिन सन्दर्भों से जुड़ी होती है वे

सभी इसके प्रेरक माने जा सकते हैं। इनमें भी विशिष्ट हैं—आज की भोगवादी संस्कृति, लोगों का नैतिक और चारित्रिक पतन तथा बेरोजगार युवकों का दिशाहीन भटकाव। स्वार्थपरता के विकराल होते स्वरूप और श्रद्धा की भावना के क्षरण के साथ अराजकता और अव्यवस्था बढ़ती जा रही है। आज प्रतिभा, योग्यता, क्षमता या दक्षता उपलब्धियों के सोपान पर चढ़कर इठलाने के स्थान पर ध्वंश एवं विनाश के ताण्डव में ही अपनी रचनात्मक सार्थकता समझने लगी हैं।

3. वर्तमान स्वरूप—(i) राष्ट्रीय स्वरूप—1947 ई. में प्राप्त आजादी दर्दीली कसक से पगी हुई थी। कतिपय लोगों की स्वार्थपरता ने जहाँ देश को तीन टुकड़ों में बाँट दिया वहीं साम्प्रदायिकता की जोरदार सौगात भी देशवासियों को उपलब्ध हुई। फिर भी स्वप्निल कल्पनाओं ने देशवासियों को उत्साहित बनाए रखा। 1954–55 ई. तक ये कल्पनाएँ सुरक्षित एवं संरक्षित रहीं। कागजी आँकड़ों के सहारे निरन्तर विकसित हो रहे इस देश के विकास का यथार्थ तब अनावरित हुआ जब देश क्षेत्रवाद, जातिवाद, प्रान्तवाद, परिवारवाद, सम्प्रदायवाद --- प्रभृति न जाने कितनी विसंगतियों की चपेट में आकर खण्ड–खण्ड में बँट गया। छोटे–छोटे बन्धन भी छटपटाहट पैदा करने लगे। फलतः मुक्ति का भाव चतुर्दिक् हिलोरे लेने लगा। पीढ़ियों से साथ–साथ रहने वाले लोग भी पारस्परिक आत्मीयता का विस्मरण कर एक–दूसरे के खून के प्यासे बन बैठे। अमानवीय गतिविधियाँ और क्रूरतापूर्ण कृत्य; आज व्यक्ति की पहचान, स्तर–बोध और उपलब्धि का पैमाना बन चुके हैं। जिस देश में अहिंसा का पुजारी ही हिंसा का ग्रास बन जाय और प्रधानमंत्री अपने ही रक्षकों का शिकार बन जाय; उस देश में आतंकवाद कहाँ नहीं है? स्वतः समझा जा सकता है। 1 अक्टूबर, 2001 को कश्मीर विधानसभा और 13 दिसम्बर, 2001 को दिल्ली में संसद भवन के समक्ष तथा 24 सितम्बर, 2002 को अक्षरधाम (गाँधीनगर) में आतंकवाद के जो ताण्डव हुए हैं वे इसके कुकृत्यों के नूतन अध्याय बन गये हैं।

(ii) अन्तरराष्ट्रीय स्वरूप—विश्व का शायद ही कोई ऐसा देश हो, जहाँ यह समस्या घर न कर गयी हो। 11 सितम्बर, 2001 को अमरीका के न्यूयार्क नगर में वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर और सैनिक मुख्यालय पेंटागन पर किया गया आक्रमण आतंकवादियों का वह दुस्साहस था जिसने अमरीका के साथ–साथ समूचे विश्व मानव को हिलाकर रख दिया। इसके लिए अनेकानेक कारक जिम्मेदार हैं। जहाँ एक तरफ आन्तरिक परिस्थितियाँ इसके लिए उत्तरदायी ठहरायी जा सकती हैं वहीं पड़ोसी राष्ट्रों के साथ खराब सम्बन्ध भी इसे बढ़ावा देते हैं। राजनीति का अपराधीकरण तो हो ही चुका है। इन सन्दर्भों के साथ ही आतंकवाद का सबसे सशक्त सन्दर्भ विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों की तानाशाही मानसिकता से भी जुड़ा हुआ है। अनेक राष्ट्रों में यह जातीय हिंसा के रूप में भी अपना क्रूरतम जौहर दिखा रहा है।

4. दुष्परिणाम—आतंकवाद ने मानव–मूल्यों की जड़ हिलाकर रख दी है। आने वाले दिनों में यदि आतंकवादी मानसिकता लोगों की सुख–शान्ति छीनकर उनके अस्तित्व को ही चुनौती देने लगे तो शायद इसे स्वाभाविक ही मान लिया जाएगा। साथ ही पारस्परिक सम्बन्धों के बिखराव के मध्य राष्ट्रीय सम्पत्ति की हानि तथा आम जीवन का अस्त–व्यस्त हो जाना; ऐसे सन्दर्भ हैं जो किसी भी राष्ट्र के लिए अभिशाप सिद्ध हो सकते हैं। राष्ट्र के किसी भी अंग का विकार उसके दूसरे अंगों को भी प्रभावित करता है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय आतंकवाद तो कभी–कभी राष्ट्र के समूचे विकास को ही दफना देता है। प्रमाण प्रस्तुत करने की आवश्यकता

नहीं। कुवैत, ईरान, अफगानिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका, नेपाल, फिजी ---- प्रभृति न जाने कितने अभागे देश इस त्रासदी के जीवन्त दस्तावेज बन चुके हैं। यहाँ इन्सानियत का जो हश्र हुआ है या हो-रहा है, उसके बारे में अब कुछ कहना जरूरी नहीं, क्योंकि सभी उससे सुपरिचित हैं।

5. समाधान के उपाय—जब कोई समस्या विकट रूप धारण कर लेती है तब उसका समाधान काल्पनिक बन जाता है। आतंकवाद की समस्या का समाधान भी कुछ ऐसा ही बन चुका है। आन्तरिक धरातल पर आतंकवाद को स्थापित करने वाले दो प्रमुख कारण हैं—अपराधियों को मिल रहा राजनीतिक संरक्षण तथा युवा बेरोजगारों का दिशाहीन भटकाव। अत: राजनीति में एक आदर्श आचार-संहिता का लागू किया जाना आवश्यक है। साथ ही जनसंख्या वृद्दि पर रोक लगाकर तथा रोजगार के अधिक-से-अधिक अवसर जुटाकर भी इस समस्या को शिथिल एवं अशक्त किया जा सकता है। आतंकवादी का हौसला तब और बढ़ता है जब उसका विरोध नहीं किया जाता। अत: आतंकवाद से प्रभावित क्षेत्र के लोगों को आत्मरक्षा का प्रशिक्षण देकर एवं अत्याधुनिक हथियार उपलब्ध कराकर आतंकवादियों का सामना करने के लिए भी प्रेरित किया जाना आवश्यक है। अन्तरराष्ट्रीय धरातल पर व्याप्त आतंकवाद का एक प्रमुख कारण कुछ विकसित राष्ट्रों की दादागीरी भी है, जिसके समाधान का सबसे सहज उपाय यह है कि विकासशील एवं अविकसित राष्ट्र संगठित होकर उनका भरपूर विरोध करें। बिन लादेन और तालिबान के विरुद्ध अमरीका एवं अन्य राष्ट्रों द्वारा उठाये गये कदम आतंकवाद के विरुद्ध एक नयी पहल माने जा सकते हैं।

6. निष्कर्ष—मनुष्य स्वभाव से शान्तिप्रिय प्राणी है। अत: वह यथासम्भव हिंसक गतिविधियों से बचने का प्रयास करता है। किन्तु कुत्सित मानसिकता में जब वह भटक जाता है तब वह अपने साथ-साथ दूसरों के जीवन के लिए भी संकट बन जाता है। ऐसे भटके हुए लोगों को सुधारना बहुत सरल नहीं, क्योंकि इनके प्रति किये जाने वाले व्यवहार का निर्धारण किया जाना एक कठिन कार्य होता है। ---- यह समझ में नहीं आता कि इनके प्रति **शठे शाठ्यम् समाचरेत्** का दृष्टिकोण अपनाया जाय या फिर **शठ सुधरहिं सतसंगति** पाये का। परन्तु यह सुनिश्चित है कि यदि आतंकवादियों की समस्या को गहराई से समझकर सुलझाने का प्रयास किया जाय, उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का उद्यम किया जाय, साथ ही हठधर्मी आतंकवादियों को बुरी तरह कुचल दिया जाय तो आतंकवाद की समस्या पर एक सीमा तक अंकुश लगाया जा सकता है।

ऊर्जा के परम्परागत एवं गैर परम्परागत स्त्रोत :